

# अस्मिता

(नई कविता का प्रतिनिधि संकलन)

सम्पादिका
डॉ० श्रीमती सरोजिनी अग्रवाल
एम० ए०, पी-एच० डी० (कुलाधिपति पदक से अलंकृत)
प्रभारी अध्यक्षा, हिन्दी-विभाग
गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद।



शिक्षा प्रकाशन गृह, बरेली

प्रकाशक :
शिक्षा प्रकाशन गृह
बड़ा बाजार, बरेली





प्रथम संस्करण : १९८६

मूल्य : ग्राठ रुपये मात्र

मुद्रक :
साकेत प्रिंटिंग प्रेस
किशोर बाजार, बरेली

# कृतज्ञता प्रकाशन

'अस्मिता' में जिन कवियों की कविताओं को संकलित किया गया है, उनके प्रति सम्पादिका अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

—डा० सरोजिनी अग्रवाल

# अनुक्रमणिका


**अपने वातायन से** १-२४

हिन्दी की नई कविता १

कवि-परिचय १३

**पाठ संकलन**

**श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'** २५-३३

यह दीप अकेला २५

होने का सागर २६

मथो २६

पक्षधर २७

देह-वल्ली २९

कलगी बाजरे की ३०

बना दे, चितेरे ३१

**श्री गजानन माधव 'मुक्तिबोध'** ३४-४७

दूर तारा ३४

नूतन अहं ३५

मेरे लोग ३६

पता नहीं…… ४०

अँधेरे में (कुछ अंश) ४३

**श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना** ४८-५९

धीरे-धीरे ४८

भेड़िया-३ ५१

सामाजिक अभिव्यक्ति ५२

रूप-दर्शन ५२

राह निकलेगी ५३

कुआनो नदी (कुछ अंश) ५४

**श्री भारतभूषण अग्रवाल** ६०-६७

जीवन-धारा ६०

चुक गया जब नेह ६२

जल रहा हूँ मैं ६३

पी लो यह विष भी ६३

खंड हूँ विराट का ६४

बीज तू—मूल भव ६६

**शब्दार्थ-संकेत** ६८-७०

# हिन्दी की नई कविता

## कवि एवं कविता का नया सम्बन्ध

कवि एवं कविता का सम्बन्ध सर्जक तथा सृजन का एक रागात्मक सम्बन्ध है। नए परिवेश में यह परम्परागत सम्बन्ध नई आधार-दृष्टि लेकर आया है। आज कवि का पहला गुण-सम्पृक्ति है। वह विशिष्ट व्यक्ति न होकर हममें से एक है, समय का सहयात्री और समभागी है। उसकी यही उदार आत्मीयता उसे अपने सृजन के साथ एक नए संवेदनात्मक सम्बन्ध के धरातल पर प्रतिष्ठित करती है। आज कवि की भूमिका तटस्थ पर्यवेक्षक की भूमिका नहीं रह गई है प्रत्युत् वह सम्पूर्ण जीवन-संघर्ष का साक्षी और सूत्रधार बन गया है। अपने युग के साथ इतनी गहरी घनिष्ठता कवि ने पहली बार अनुभव की।

आज के कवि की संवेदनशील भावुकता उसके बौद्धिक विवेक से अनुशासित है इसलिए कविता के साथ उसका रिश्ता अधिक प्रमाणिक हो गया है। कवि ने यह नया रिश्ता मनुष्यता के आधार पर बनाया है—अर्थात अब वह एक सोद्देश्य सृजन में विश्वास रख कर अपने हर शब्द को मानवता के अर्थ तक पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील है और कविता को किसी नाम में न बाँधकर अपना प्रतिरूप मानता है। अपने काव्य के प्रति यह दृष्टि निश्चय ही नई है।

कवि की तरह आज कविता के भी कुछ नए तेवर हैं। आज शब्द, अर्थात सम्पूर्ण काव्य-शिल्प का अपना कोई विशिष्ट आकार नहीं रह गया है, वह मात्र एक जड़ माध्यम है जिसे कवि अर्थवत्ता देता है। अपनी अनुभूति को अधिकाधिक प्रेषणीय बनाने के लिए अभिव्यंजना को मनमाना आकार देना, कवि अपना अधिकार और साहित्यिक कर्त्तव्य मानने लगा है, यही कारण है कि आज हर नए कहे जाने वाले कवि का अपना अलग शिल्प है।

आज की कविता का अर्थ अर्थात अनुभूति अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध हो गई है क्योंकि आज सम्पूर्ण जन-जीवन अपनी उपलब्धियों-अनुपलब्धियों तथा अपने 'आज' और 'कल' के साथ कविता का विषय बन गया है। इसके साथ बौद्धिकता के आग्रह के कारण चिंतन, दर्शन, विज्ञान तथा वह सभी कुछ जो कवि के अनुभव की सीमा में आता है, बिना किसी प्रतिबद्धता के कविता का विषय है। हृदय के साथ मस्तिष्क की यह समानान्तर स्थिति कम से कम कविता में पहले कभी नहीं दिखाई दी।

आज रस की कोई शास्त्रीय परिकल्पना नहीं है कविता का एकमात्र उद्देश्य पाठक या श्रोता को अपने साथ अपनी मन:स्थिति में सहभागी बना लेना है और इसी को आज का कवि साधरणीकरण कहता है आज की कविता अपनी कल्पना से कुछ बढ़कर या बाहर से कुछ उधार लाकर किसी पर थोपती नहीं है वरन् वह हमारे सामने एक उजला दर्पण रख देती है जिसमें हम अपना असली चेहरा पहले से और अच्छी तरह देख सकें यानी वह हमारी अपनी बात हमीं से कहती है। यही सब कवि और कविता के पारस्परिक सम्बन्ध का नयापन है।

'नयापन' परिवर्तन की एक अवश्यंभावी सहज प्रक्रिया है और अपने व्यापक अर्थ में वह नयापन अब तक की स्वीकृतियों से अपनी असहमति का प्रतीक है। इस नवीनता को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ और संकेत प्रयोग किए जा सकते हैं, जैसे नयापन 'स्थापित सत्यों का विरोध' या 'समय सापेक्ष मूल्यों का समर्थन' या 'गतानुगतिकता छोड़ने का आग्रह' या 'पारंपरिक प्रतिबद्धताओं मे मुक्ति का प्रयत्न' या 'कुछ और अधिक सार्थक खोजने का मोह' या 'ऐतिहासिकता के विपरीत वैज्ञानिक दृष्टि का अनुशीलन' या 'जीवन और जगत का नया मूल्यांकन' और या 'अपने अस्तित्त्व का अनकहा प्रवचन' है। कविता के साथ भी यह नयापन इन्हीं अर्थों से जुड़ा है।

मेरे विचार में नई कविता को उस काव्य-सृजन का प्रतीक मानना चाहिए जो ऐतिहासिक व्यामोह से उबरकर, समकालीन सत्यों से पूर्ण साक्षात्कार करती हुई व्यक्ति और समाज की भावी नियति को माँगलिक मूल्यों से सम्बद्ध करने के लिए प्रयत्नशील है।

## विकासात्मक पृष्ठभूमि

विकासात्मक काल क्रम की दृष्टि से नई कविता का नामकरण प्रयोगवाद के सप्तकों के प्रकाशन के बाद हुआ है और इससे पूर्व की कविता प्रगतिवाद और छाया-वाद के नाम से जानी गई।

छायावाद का आरम्भ अपने अस्तित्त्व-बोध के साथ हुआ था। कवि ने परम्परागत काव्य-विषयों (प्रेम, प्रकृति, सौन्दर्य, नारी) को एक आत्मपरक व्यक्तिनिष्ठ दृष्टकोण से, कलात्मक उपादानों के ललित परिष्कार के साथ प्रस्तुत किया। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के अनेक अनछुए क्षितिज उद्घाटित हुए और कविता द्विवेदी युगीन गद्यात्मक प्रवृत्तियों से मुक्त होकर पुनः रसवंती हो गई थी लेकिन अस्मिता के प्रति दुराग्रह के कारण सामाजिक समस्यायें निष्कासित होती चली गई और कविता तथा जनता के बीच आनुभूतिक सेतु टूट गया। कविता एक बार व्यक्ति-विलास की वस्तु प्रतीत होने लगी। तत्कालीन संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में छायावाद की रोमांटिक भूमिका धीरे-धीरे निरर्थक होती गई।

छायावाद के आकाशी रश्मि-बंध को छोड़कर धरती पर बिछी घास के विषय में चिन्तन करने का दायित्व प्रगतिवाद ने लिया। प्रगतिवाद, सामाजिक जीवन-दर्शन से सम्बन्धित एक राजनीतिक विचार-धारा है, जिसके मूल में रूस में प्रतिष्ठित साम्यवाद और मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। मार्क्स के लिए भौतिक जगत ही सत्य है, अर्थ ही सम्पूर्ण विषमताओं का मूल कारण है। अतः अर्थ के असमान वितरण से उत्पन्न सामाजिक विसंगतियों का निराकरण कर एक वर्गहीन व्यवस्था की स्थापना उनका मूल उद्देश्य है। इसीलिए प्रगतिवाद व्यक्ति का सामाजीकरण कर सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को रचना का उद्देश्य मानता है।

प्रगतिवादी-काव्य में पूँजीवाद का व्यंग्यात्मक विरोध, शोषित वर्ग का संवेदनात्मक चित्रण, भौतिक अभ्युदय एवं नारी-मुक्ति के स्वर तथा नए समता-वादी समाज के लिए क्रांति का उद्घोष आदि भावों के साथ कला के क्षेत्र में जन-भाषा, जनवादी उपमाओं एवं जन-प्रचलित छंदों का विशेष आग्रह है। प्रगतिवाद की काव्य-दृष्टि मानवतावाद से जुड़ी रहने पर भी अपनी अतिबौद्धिकता, अतियथार्थवादिता एवं मार्क्सवादिता के कारण अनुभूतिपरक रागात्मकता के अभाव में केवल एक राजनीतिक आन्दोलन की प्रचारिका बन कर रह गई। प्रगतिवादी कविता की विषय-वस्तु सम्बन्धी अनुभव-शून्यता एवं शिल्प लालित्य के प्रति कोरी उदासीनता से ही प्रयोगवाद को अपने अस्तित्त्व का आधार मिला।

सन ४३ के 'तार-सप्तक' के प्रकाशन के माध्यम से कुछ नए भाव-बोधों एवं शिल्पगत चमत्कारों को लेकर जो कवितायें प्रकाश में आईं उन्हें परिहास में 'प्रयोगवाद' नाम दिया गया और वही कालान्तर में रूढ़ हो गया। प्रयोग, युग-परिवर्तन की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में 'अज्ञेय' जी ने स्पष्ट लिखा है "प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है, क्योंकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को जानने का भी साधन है। अर्थात प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह व्यक्त कर सकता है। वस्तु और शिल्प दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है।" अज्ञेय जी के ही अनुसार यौन-पुंजों और वर्ग-चेतना की संघर्षगत जटिलता ही आज के व्यक्ति मन और कवि की आत्मा का सत्य है।

प्रयोगवादी सामाजिकता का अर्थ है सामयिक जीवन-संघर्षों से अपनी अनुभूति को जोड़ना। उनका यथार्थवाद जीवन के बौद्धिक विश्लेषण का पर्यायवाची है और उसने अपने अन्तःसंघर्ष की पीड़ा और तत्सम्बन्धी उलझी हुई संवेदनाओं को ही युग मन का यथार्थ मान लिया है। प्रयोगवादी कवि मन की इन्हीं जटिल एवं असमान्य प्रवृत्तियों की अक्षुण्ण अभिव्यक्ति करता है जिससे साधरणीकरण का

प्रश्न सहज ही उठ खड़ा होता है। 'अज्ञेय' जी ने साधारणीकरण का अर्थ, अर्थ की उस प्रतिपत्ति से लगाया है जिससे पुनः राग का संचार हो और इसीलिए वे शिल्पगत प्रयोगों के पक्षधर हैं लेकिन साधारणीकरण की यह धारणा बहुत अस्पष्ट है।

वस्तुतः राग तत्त्व के ऊपर बुद्धि तत्व के निरंकुश आधिपत्य से ही प्रयोगवादी कविता को पूरी तरह से सच्चा काव्य नहीं स्वीकार किया गया। प्रयोगवादी दुराग्रही थे और उनमें यथार्थवाद के नाम पर दमित काम-वासना की अभिव्यक्ति तथा आत्मानुभवों की नितान्त वैयक्तिक संकीर्णता के साथ भाषा के एकान्तिक प्रयोगों एवं प्रतीकों के अप्रचलित संयोजन आदि प्रवृत्तियों का बाहुल्य था। प्रयोगवाद अपने नामकरण एवं काव्यगत रुचियों के कारण निरन्तर व्यापक आक्षेप का पात्र बन रहा था, संभवतः इसी व्यापक आलोचना से मुक्ति पाने के लिए 'प्रयोगवाद' के स्थान पर धीरे-धीरे 'नई कविता' शब्द व्यवहृत होने लगा। नई कविता से पूर्व एक शब्द 'प्रपद्यवाद' भी सामने आया जिसकी स्थापना का प्रयास पटना के तीन कवियों 'नकेन' अर्थात नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश ने किया। 'नकेन' नाम से उनका कविता संग्रह १९५६ में प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त भी कई नाम लिए गए जैसे अस्वीकृत कविता, अकविता, सकविता, आधुनातन कविता, साम्प्रतिक कविता, बोध कविता, ताजी कविता, प्रतिबद्ध कविता, सहज कविता एवं साठोत्तरी कविता आदि। किसी विशेषण या वाद से अनिबद्ध होने के कारण ही 'नई कविता' शब्द अपेक्षाकृत अधिक लोकग्राह्य हुआ।

'नई कविता' प्रयोगवाद की पर्यायवाचिनी नहीं है और न ही उसके विरोध में सामने आई है। नई कविता की मूलभूत प्रवृत्तियों का बीजारोपण प्रयोगवाद में ही हो चुका था केवल उनके प्रति एक नई दृष्टि निरन्तर प्रखर हो रही थी। छठे दशक के प्रारम्भ के साथ ही नई कविता, प्रयोग के अतिरिक्त उत्साह से मुक्ति पाकर एक नई दिशा की ओर बढ़ी और वह दिशा थी—नये मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा। नई कविता को उस उत्तरछायावादी काव्य-धारा का पर्याय माना जा सकता है जो परम्पराओं को यत्किंचित आत्मसात करती हुई भी व्यक्ति के अस्तित्त्व-बोध, व्यापक यथार्थ-ग्रहण एवं सतर्क बौद्धिक लाक्षणिक व्यंजना के विकास का प्रयत्न करती हुई युग मानव के लिए नवीन भाव-भूमि प्रस्तुत कर रही थी।

## वस्तुगत प्रवृत्तियाँ

नई कविता में अनेक विशिष्टतायें हैं जो उसे परम्परा से अलग खड़ा करके रेखांकित करती हैं।

**अस्मिता-बोध**—अस्मिता का साधारण अर्थ है अपने होने का भाव – अर्थात 'मैं हूँ' इसका ज्ञान। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका रूप है अस्मि+तल्+टाप् प्रत्यय,

अर्थ होता है—अहंकार, "मैं हूँ" इसका अभिमान करना। अज्ञान के पाँच भेद माने गये हैं जिसमें 'अस्मिता' भी एक है। दर्शन की दृष्टि से सारी सृष्टि में दो तत्त्व माने जाते हैं अहं (चेतन, विषयी, भोक्ता) और इदं (विषय अर्थात सम्पूर्ण जगत)। भारतीय संतों ने 'अहं' को मिथ्याहंकार का पर्यायवाची शब्द मानकर उसे अविद्या रूप एवं त्याज्य बताया है पर फ्रायड आदि पाश्चात्य विचारक इसी 'अहं' के विविध रूपों को सृजन का मूल तत्व स्वीकार करते हैं।

इस अहंवाद के दो पक्ष होते हैं—एक स्वस्थ एवं संतुलित, दूसरा विसंगत एवं विकृत। इदं अर्थात् सम्पूर्ण जगत से सामंजस्य भाव में यह आत्मपरकता बुद्धि, विवेक और व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा व प्रेरणा होती है और जिजीविषा व सत्यान्वेषण की ओर प्रवृत्त करती है। अहं के विसंगत होने का अर्थ है व्यष्टि और समष्टि के मध्य अपेक्षित अनुकूलता का अभाव—जिसके कारण यही अहंवाद आत्म-रति और आत्मविज्ञापन बन जाता है।

नई कविता का मूल स्वर अस्मिता, उदीषा और जिजीविषा का स्वर है। नया कवि अपने अस्तित्व की प्रतिष्ठा और अपने व्यक्तित्व की सामाजिक स्वीकृति को ही अपना पहला युग-धर्म और कवि-कर्म मानता है। उसे अपने उत्तराधिकार में जो मध्यवर्गीय विसंगतियाँ, क्रमहीन संवेदनायें, बुद्धिवादी प्रतिक्रियायें एवं परि-वेशजनित वर्जनायें मिलीं उनसे मुक्ति पाने के लिए नए कवि ने परम्परा या प्रयोग की कोई बैसाखी न लेकर अपने व्यक्तित्व की वर्तिका के बल पर ही विराट अंधकार से जूझने का निर्णय लिया—यही उसका अस्मिता-बोध है।

नई कविता में व्यक्तिवादिता के नियंत्रित एवं निरंकुश दोनों ही रूप प्राप्त होते हैं। निजता के शुभ आयाम जीवन के प्रति अखंडित आस्था, संघर्ष की संकल्पात्मक चेतना, समय-सापेक्ष मूल्यों की अन्वेषणशीलता एवं सार्वजनीन दायित्वों के प्रति जागरूकता आदि अनेक रूपों में अभिव्यंजित हुए हैं। नया कवि समष्टि के लिए आत्म-विसर्जन को सहर्ष प्रस्तुत है :

**यह दीप अकेला स्नेह-भरा**
**है गर्व भरा मदमाता, पर**
**इसको भी पंक्ति को दे दो** **(अज्ञेय)**

उसका मूल लक्ष्य व्यक्ति होकर भी अन्ततः लोक-जीवन ही है और युग की साध अपनी आकांक्षाओं से बहुत ऊपर है :

**प्राण ! तुम्हारी इन अतृप्त साधों से**
**मेरे युग की साध कहीं ऊपर है** **(दुष्यन्त कुमार)**

कवि अपनी बात नहीं, समाज की बात ही करना चाहता है। अजित कुमार ने लिखा है—

**वह जो मैंने कहा/मेरा अपना कभी नहीं था/जो भी था/वह तुम सबका था/·········मेरा अपना ?/नहीं, नहीं/मेरा निज का वह कभी नहीं था।**

इस प्रकार नये कवि की अस्मिता में सामान्य-जन के साथ अपनेपन से भरी सहचारिता का भाव और साथ-साथ अमृत तथा विष पीने का बंधुत्व है।

अहंवाद का यह मांगलिक विधान अपने अविवेक में कहीं-कहीं कोरी आत्मप्रशंसा एवं अहम्मन्यता भी बन गया है। मनोविज्ञान का मिथ्या आश्रय लेकर असम्बद्ध अनुभव-खंडों की वैसी ही क्रमहीन प्रस्तुति का आग्रह तथा नवीनता के नाम पर भाषा, छंद एवं अप्रस्तुत योजना के बौद्धिक चमत्कार भरे प्रयोग उनकी विकृत मनोवृत्ति के ही परिचायक हैं, लेकिन 'लघुमानव' या 'क्षण-वाद' सम्बन्धी उनकी स्थापनाओं एवं विघटनकारी स्थितियों (निराशा, नास्तिकता, अनास्था) आदि के चित्रण को अस्मिता की अस्वस्थ भूमिका न मानकर यथार्थ-वादी दृष्टि का परिणाम कहना अधिक समीचीन है।

**यथार्थवादी दृष्टि**—यथार्थ का तात्पर्य युग-सत्य को उसकी सम्पूर्णता में सहज भाव से स्वीकार करना है। नई कविता के यथार्थवाद का मूल आधार मध्यवर्गीय मनुष्य और जीवन से कवि का गहरा और भुक्तभोगी लगाव है। यह यथार्थ दो रूपों में अभिव्यक्त हुआ है—एक तो लघुमानव की परिकल्पना में और दूसरे मरणोन्मुखी परिवेश के तथा अनाकर्षक भदेस के चित्रण में।

लघु मानव का अर्थ है चिरपरिचित अति साधारण मनुष्य जिसके जीवन-संदर्भ और संवेदनायें आज तक उपेक्षित रही हैं। नया कवि मनुष्य को उसकी नैसर्गिक क्षमताओं और दुर्बलताओं के साथ प्रस्तुत करना चाहता है। नई कविता के लिए मानव की महत्ता का मापदंड किसी प्रकार के कल्पित मूल्य न होकर उसके भीतर की सहज आदमियत है। 'अज्ञेय' ने लिखा है :

**अच्छा निर्धन दानी का उघड़ा उर्वर दुःख**
**धनी सूम के बंजर धुआँ घुटे आनन्द से**

जनसत्ता के मसीहाओं के बड़प्पन की नींव में इसी लघु मानव की बलि दी गई है :

**हम छोटे लोग—नींव और सीढ़ियाँ** (**पुरुषोत्तम खरे**)

मानव-सभ्यता की बुनियादी स्थापनाओं में लघु मानव की भूमिका अपरि-हार्य रही है। कुछ समीक्षकों ने 'लघुता' को स्वाभिमान विरोधी गुण मानते हुए उसकी वरेण्यता को अनुचित कहा है।

नई कविता की यथार्थवादी दृष्टि का दूसरा परिचय उनके समसामयिक परि-वेश के वास्तविक चित्रण में मिलता है। आज नैतिकता के ह्रास, युद्ध की आशंका,

राजनीतिक अनाचार एवं सामाजिक तथा आर्थिक प्रतिबद्धताओं के कारण सर्वत्र निराशा, कुंठा एवं अनास्था है। सहायता का दर्द हर पल कवि के साथ है :

**मैं हूं नदी तल की रेत**
**अर्पित हूँ**
**लेकिन किसी भी क्षण पाँवों तले से**
**बह जाऊँगा**

**(धर्मवीर भारती)**

कवि अपनी अकिंचनता की यातना को निरन्तर झेलता है। आज की परिवेशात्मक परिस्थितियों के कारण मानवीय अस्तित्व संकट ग्रस्त एवं मांगलिक मूल्य निष्कासित हो गये हैं और इसीलिए कवि दुःखी है—अपनी असमर्थता के कारण यही दुःख कई गुना हो जाता है। कवि ने अपनी वेदना को सहज भाव से व्यक्त किया है, उसे युग-दर्शन मान कर प्रतिष्ठित करने का दुराग्रह नहीं किया है—जैसा कि कुछ आलोचकों ने आरोप लगाया है।

यथार्थ के नाम पर नई कविता ने नित-प्रति व्यवहार में आने वाली वस्तुओं को (जैसे चूड़ी का टुकड़ा, चाय की प्यालियाँ, साइकिल, चप्पल, थरमस, नोन, तेल, लकड़ी) काव्य का विषय बनाया है, साथ ही अब तक की त्याज्य एवं कुरूप स्थिततिों को चित्रित किया है जिन्हें 'भदेस' कहा गया। नये कवि की दृष्टि में भदेस का चित्रण सौन्दर्य को सम्पूर्णता और व्यापक आयाम देता है। जैसे 'अज्ञेय' ने लिखा

**निकटतर धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद**
**मूत्र-सिंचित मृत्तिका के वृत्त में,**
**तीन टाँगों पर खड़ा नतग्रीव**
**धैर्यधन गदहा**

नये कवियों की यथार्थवादी दृष्टि ने अनुभूतियों को प्रामाणिकता और व्यापकता दी है, लेकिन कहीं-कहीं अतिवादिता के कारण उसकी सार्थकता पर अनेक प्रश्न-चिन्ह भी लगे हैं।

**बौद्धिक चेतना**—नई कविता प्रज्ञा की मानस-पुत्री है– अतः उसकी मूल चेतना रागात्मक अनुभूति न होकर वैज्ञानिक बुद्धिपरकता है। इसी बौद्धिकता के कारण नये कवियों में नास्तिकता, क्षणवादी दर्शन, भोगवादी प्रवृत्ति एवं अनुभवों के असम्बद्ध मनोवैज्ञानिक चित्रण का अधिक आग्रह है।

क्षणवाद समय के सम्पूर्ण प्रवाह को क्षणों का योगफल मानता है और हर क्षण को सुखी बनाना ही जीवन का चरमोत्कर्ष है–ऐसी उसकी धारणा है। नया कवि काल निरपेक्ष एक क्षण में भी अमरत्व देखता है:—

एक क्षण : क्षण में प्रवहमान / व्याप्त सम्पूर्णता / इससे कदापि बड़ा नहीं था महाम्बुधि जो / पिया था अगस्त्य ने / एक क्षण, होने का / अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण। / होने का सत्य का- / सत्य के साक्षात् का / साक्षात के क्षण का / क्षण के अखण्ड पारावार का / आज हम आचमन करते हैं। नये कवि ने स्पष्ट घोषणा की है कि समूचे जीवन के सन्दर्भ में क्षण को अनुपयोगी मानकर नकारा नहीं जा सकता क्योंकि वह किसी न किसी अनुभूति से जुड़ा है।

क्षणवाद ने जीवन के प्रति भौतिक उपभोग की निर्बंध आकांक्षा को प्रश्रय दिया। कवि ने सौन्दर्य और प्रेम को केवल मांसलता एवं वासना में रूपान्तरित कर सम्पूर्ण लोक-मर्यादाओं और नैतिक आचार-संहिताओं की खुली अवहेलना की। प्रणय-व्यभिचार और वासना, जीवन-मूल्य बन गई :

**आमाशय,**
**यौनाशय,**
**गर्भाशय,**
**जिसकी जिन्दगी का यही आशय।**
**यही इतना भोग्य**
**कितना सुखी है वह,**
**भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य ।**

**(कुँवर नारायण)**

नई कविता पर फ्रायड के स्वच्छंद यौनवाद का प्रखर प्रभाव है।

नए कवि ने बौद्धिक चेतना के नाम पर मनोविश्लेषण के सत्य को काव्य का विषय बनाया और अनुभवों को उनकी सम्पूर्णता में न व्यक्त कर मुक्त अनुषंगों (Free Associations) में व्यक्त किया जिसके कारण कविता भानुमती का पिटारा बन गई :

**आह, सारी रात**
**चाय रख दो कागजों पर**
**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी**
**ई ईश्वर उ, उल्लू**
**चल हट बेटा** **(राधाकांत भारती)**

यह सत्य है कि अपनी बौद्धिक चेतना और वैज्ञानिक दृष्टि के कारण ही नयी कविता जीवन से सीधा सम्पर्क स्थापित कर मनुष्य के आंतरिक संघर्ष को सही ढंग से प्रस्तुत कर सकी है लेकिन कहीं-कहीं इस बुद्धिप्रियता ने उनके अस्मिता-बोध को इतना वैयक्तिक और एकान्तिक बना दिया है कि वह आलोचना का विषय बन गयी।

**वादमुक्तता एवं व्यंग्य**—नई कविता में मार्क्सवादी जीवन-दर्शन एवं प्रयोगवादी अन्वेषण तथा अन्य कुछ मूल चेतनाओं का स्पर्श अवश्य है लेकिन अन्ततः वह मानवतावाद के उदारधरातल पर ही प्रतिष्ठत है इसीलिए वाद विशेष से मुक्त है।

नई कविता के व्यंग्य का आधार सामयिक परिवेश है। आज का युग मानवीय मूल्यों के विघटन का युग है और बुद्धिवादी कवि इस संक्रांति को झेलता है—इसीलिए उसकी तीव्र प्रतिक्रिया कभी व्यक्तिगत, कभी सामाजिक और कभी राजनीतिक व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुई :

**लेकिन मैं देखता हूँ**
**कि आज के जमाने में**
**आदमी से ज्यादा लोग**
**पोस्टरों को पहचानते हैं**
**वे आदमी से बड़े सत्य हैं**

**(सर्वेश्वर दयाल)**

सामाजिक स्तर पर कवि का आत्मानुभूत असंतोष ही व्यंग्य बन गया है जिसे उसने युगीन विसंगतियों को उजागर करने का साधन मान लिया। यह व्यंग्य संयम छोड़कर कटूक्ति नहीं बना है इसीलिए अपना अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ हो सका है।

**अन्य प्रवृत्तियाँ**—नई कविता का जीवन-दर्शन आस्थामूलक है। उनकी वेदना उनके संकल्पों को बल देती है, पलायन की ओर प्रेरित नहीं करती। उन्हें सुखी भविष्य की विश्वासभरी प्रतीक्षा है और वे अनुभव की अग्नि में तप कर निरन्तर सार्थक मूल्यों की खोज में संलग्न हैं।

नई कविता में रस की शास्त्रीय परिकल्पना न हो कर सह-अनुभूति को साधारणीकरण कहा गया है। डॉ० जगदीश गुप्त ने 'नई कविता' अंक चार में लिखा है "पाठकों में सह-अनुभूति जगाना ही कवि का कार्य है। अपनी आन्तरिक भाव-छवियों या बाह्य-संवेदनों के प्रति जो भावात्मक या वैचारिक प्रतिक्रियाजन्य अनुभूति अपने को होती है उसे उतनी ही मात्रा में पाठकों में जगाना ही वे अपना कर्त्तव्य मानते हैं।

नई कविता में प्रकृति के प्रति एक विशेष संवेदनशीलता है और कवियों का आकर्षण ग्राम्यश्री की ओर अधिक है। वस्तुतः नई कविता की वस्तुगत प्रवृत्तियों में विस्तार और विश्वसनीयता है। विस्तार इसलिए क्योंकि नए कवि ने अनेक अनछुए भाव-क्षेत्रों को ग्रहण किया है और विश्वसनीयता का कारण है कि उन्होंने

जो कुछ व्यक्त किया वह आरोपित या अनुमानित न होकर स्वयं उनका भोगा हुआ सुख-दुःख है ।

**शिल्प-विधान** —नई कविता का शिल्प-विधान अपने विषय-जगत की भाँति ही परम्परामुक्त है और यह नयापन बिंब, प्रतीक, भाषा तथा छंद आदि अभिव्यक्ति के सभी उपादानों में परिलक्षित होता है। बिंब —अमूर्त्त का मूर्त्तीकरण है। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु के, कल्पना-चित्र को प्रत्यक्ष करने का साधन है। नए कवियों का बिंब-विधान अपेक्षाकृत विराट और विविधात्मक है। कवि ने दृष्टि, गंध, रस, गति, स्पर्श एवं ध्वनि आदि के आधार पर ऐन्द्रिय बिंबों एवं कला, विज्ञान, प्रकृति, पुराण एवं जीवन का आश्रय लेकर मानस-बिंबों को प्रस्तुत किया है। यथा—

**यह अंधेरे की पिटारी, पथ पड़ा यह साँप सा,**
**खोलने वाला अनाड़ी, मन रहा है काँप सा**

(सर्वेश्वरदयाल

या

**उड़ गई चिड़िया**
**काँपी, फिर**
**थिर**
**हो गई पत्ती**

(अज्ञेय)

प्रतीक का अर्थ है किसी विषय का प्रतिविधान करना अर्थात प्रस्तुत वस्तु से किसी अप्रस्तुत अर्थ की व्यंजना करना। नई कविता में सार्वभौम प्रतीकों के स्थान पर प्रायः अप्रयुक्त वैयक्तिक प्रतीकों की अधिकता रही है वैसे उसके प्रतीक-विधान के अन्तर्गत सैद्धान्तिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक एवं कलात्मक सभी प्रकार के प्रतीक-प्रयोगों की प्रचुरता है। उदाहरणर्थ :

**— इलीलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर —**
**विश्वास करना चाहता हूँ**

(मुक्तबोध)

या **—द्रोपदी सी चीखती हैं नारियाँ निर्वस्त्र**
**जिनके चीर दुःशासन कहीं पर**
**फेंक आया खींचकर**

(दूसरा सप्तक)

यौन प्रतीक अपनी विकृति एवं कलागत प्रतीक अपने शिल्पगत वैचित्र्य के कारण प्रायः दुरूह हो गये हैं।

नई कविता की भाषा खड़ी बोली है और उसका शब्द भंडार अत्यंत समृद्ध है। नए कवि ने नए शब्दों का गठन कर, प्रचलित शब्दों को नया अर्थ देकर तथा शब्दों के चिर साहचर्यजन्य पारस्परिक संबंधों को नया रूप देकर भाषा को अधिक समर्थ बनाया है। नये विशेषणों (मोरपंखिया, चाँदनी, चम्पई वृक्ष,

चितकबरी रात रेशमी बाँहें, कँवारी अकुलाहट), नये क्रियापदों (पगुराती, उकसती, आलोको, अनुरागी आदि) तथा ग्रामीण शब्दों (पलास, बदल, चंदरिया, पाहुन, चौबारे आदि) के कारण खड़ी बोली जनभाषा के समीप आ गई। नई भाषा में शब्द चयन की वर्जनाहीन दृष्टि, भावाभिव्यक्ति की अधिक सामर्थ्य तथा व्याकरण संबंधी अपेक्षित व्यवस्था आदि कई गुण हैं। कहीं टेढ़े-मेढ़े व आड़े-तिरछे चिन्हों के प्रयोग से भाषा निरर्थक शब्दों का समूह बन कर भी सामने आई है।

नई कविता अधिकांशतः मुक्त छंद में लिखी गई है। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के अनुसार 'मुक्त छद तो वह है जो छंद की भूमि में रह कर भी मुक्त है·· मुक्त छंद का समर्थक उसका प्रवाह ही है, और उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति।' नए कवि ने छंद के पूर्व प्रचलित प्रतिमानों (चरण, तुक, यति आदि) को न स्वीकार कर अनुभूति की आवेशात्मक लय को ही छंद का मूल तत्त्व स्वीकार किया है। नई कविता के छंद-विधान पर लोक-गीतों की धुन, उर्दू-फारसी की रुबाइयों, गजलों और शेरों तथा अंग्रेजी के सानेट (चतुर्दशपदी) आदि का विशेष प्रभाव पड़ा है। छंदों को कहीं प्रश्नोत्तर रूप में और कहीं गणित के चिन्हों के साथ भी लिखा गया है। छंदों को लेकर कुछ ऐसे निरंकुश प्रयोग भी नई कविता में किए गए हैं कि छंद की पंक्तियाँ खंडित गद्य की पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं।

नया कवि अपने शिल्प-विधान के प्रति सतर्क रहा है इसीलिए उसमें विस्तार और विविधता है। नए विषयों के अनुरूप नई अभिव्यंजना प्रणाली अपनाकर उसने प्रयोगशीलता का भी परिचय दिया है लेकिन उसकी शिल्प-योजना में व्यवस्था और पूर्णता का अभाव सर्वत्र खटकता है। नए कवियों की अतिबुद्धिवादिता और नएपन की अंधी पक्षधरता के कारण बिंबों, प्रतीकों, शब्दों और छंदों में एक ऐसी अस्पष्टता और जटिलता उत्पन्न हो गई है कि उन्हें सुलझाने के प्रयास में प्रायः कविता से प्राप्त होने वाला आनन्द-भाव ही समाप्त हो जाता है।

**निष्कर्ष**—नई कविता कोई वाद नहीं है उसका काव्य व्यापक और दृष्टि उन्मुक्त है। उसके संस्कार अस्मितामूलक और उसका चिंतन समष्टिपरक है। वह अनुभूति के सत्यों और बुद्धि के निष्कर्षों की पक्षधर है। उसमें बाह्य संघर्ष का रूप आन्तरिक द्वंद्व की रेखाओं से निर्मित है। पाश्चात्य प्रभावों को ग्रहण करती हुई भी अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं से जुड़ी है और उसने देह के साथ आत्मा के प्रश्नों तथा वर्तमान के समानान्तर भविष्य की संभावनाओं पर भी विचार किया है। नए कवि ने मनुष्य को मनुष्य और जीवन को जीवन के सहज भाव से ग्रहण किया है। इसीलिए नई कविता में व्यक्ति मन के सत्य और युग मन के बोध अपनी समग्रता के साथ व्यक्त हुए हैं। उसकी अनास्था नए विश्वास का यात्रा-पथ है, उसका अध्यात्म-विरोध वैज्ञानिक वातावरण की सहज प्रतिक्रिया है और उसका व्यंग्य गंभीर दायित्व-भावना तथा उसके प्रयोग सृजन-क्षमता के प्रमाण हैं। नया कवि अपने अस्तित्व

को नए सामाजिक संबंध से तथा अपने काव्य-सृजन को लोक-जीवन से जोड़ कर एक उदार मानवतावादी तथा विराट विश्व-व्यापी सांस्कृतिक परिवेश के निर्माण के लिए कृतसंकल्प है, लेकिन अभी अपने लक्ष्य से बहुत दूर राहों का अन्वेषी मात्र है।

नई कविता की अनेक एकांगिताओं एवं न्यूनताओं की ओर समीक्षकों ने संकेत किया है जिनमें कुछ इस प्रकार हैं—सत्य की एकपक्षीय अभिव्यक्ति, बुद्धिवाद की अतिशयता, आत्मकेन्द्रित व्यक्तिवाद का आग्रह, अनुशासित अनुभूति का अभाव, पाश्चात्य विचारों का अंधानुकरण, ह्रासोन्मुखी मनोवृत्तियों का बाहुल्य, प्रयोगवादिता का अतिरिक्त मोह तथा चमत्कारिक शिल्प विधान आदि।

नई ककिता के भविष्य के संबंध में दो संभावनायें हैं—एक तो यह कि नई कविता का वैचारिक, आनुभूतिक एवं रचनात्मक धरातल वादमुक्त और व्यापक है इसलिए वह अपनी उज्ज्वल संभावनाओं के प्रति आज के पाठकों को पूर्ण आश्वस्त करती है; दूसरा अनुमान यह है कि नई कविता, अपने वक्तव्य देने की प्रवृत्ति और वस्तु तथा शिल्प में पुनरावृत्ति के कारण निरन्तर निस्तेज हो रही है, इसलिए उसकी नियति अनुकूल नहीं है।

नई कविता अपनी अक्षमताओं से उबर कर स्वयं एक सशक्त काव्य-धारा के रूप में अपने को प्रतिष्ठित कर पायेगी या वह किसी प्राणवान काव्य-धारा के प्रतिस्थापित होने की प्रतीक्षा मात्र रह गई है—इसका निर्णय भविष्य करेगा।

★

# कवि-परिचय

## श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

'अज्ञेय' जी मूलत: एक प्रज्ञा-पुरुष हैं। उनके काव्य-सृजन का केन्द्र बिन्दु उनका बौद्धिक चिन्तन है। व्यष्टि-समष्टि, जीवन-जगत, कला-साहित्य और भाव तथा शिल्प सभी विषयों के प्रति उनकी एक निजी और नई विचारदृष्टि है। उनके सांस्कृतिक संस्कार, एवं मानसिक धरातल भी औरों से अलग हैं इसीलिए उनकी कविताओं को किसी एक वाद में रखना कठिन है। 'अज्ञेय' जी काव्यगत नवीनता के पक्षधर हैं। 'भवन्ती' में उन्होंने लिखा है 'कवि नए तथ्यों को उनके साथ नए रागात्मक संबंध जोड़ कर नए सत्यों का रूप दे, उन नए सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करे, यही नई रचना है।' कवि ने स्वयं को छायावादी आसक्ति और साठोत्तरी आकाश से मुक्त रखा है।

'अज्ञेय' जी का काव्य व्यक्तित्व और स्वातंत्र्य की खोज का काव्य है। व्यक्तित्व का तात्पर्य है अपनी अस्मिता की सुरक्षा और स्वतंत्रता का अर्थ है सामाजिक व नैतिक वर्जनाओं से मुक्ति। व्यक्ति के सम्मुख आज दो प्रकार के संघर्ष हैं— आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक संघर्ष सामाजिक रुढ़ियों की लम्बी परंपरा और स्थिति परिवर्तन की असाधारण गति के बीच सामंजस्य न होने के कारण उत्पन्न हुआ है क्योंकि व्यक्ति सही मूल्यों का निर्णय नहीं कर पा रहा है। बाह्य संघर्ष व्यक्तिगत चेतना पर लदी वर्गगत चेतना के कारण है, जिससे अनेक प्रकार की वर्जनायें खड़ी हो गई हैं। अत: मानवीय अस्तित्त्व की प्रतिष्ठा करना कवि का पहला युग-धर्म है। मछली, सागर, हारिल, हरी घास तथा धूप आदि के प्रतीकों से कवि ने सर्वत्र यही मुक्ति-कामना व्यंजित की है।

सौन्दर्य और प्रेम के प्रति एक पूर्वाग्रह रहित पारखी दृष्टि, उनकी कविताओं की दूसरी बड़ी विशेषता है। 'अज्ञेय' जी ने छायावाद की व्योमबाला को धरती पर उतार कर उसका पार्थिव शृंगार किया तथा नारी को उसकी देह और उसके मन की समग्र इयत्ता के साथ चित्रित किया। उनके रूप-सौन्दर्य में मनस्तत्व और उनके प्रेम में ऐन्द्रिय अनुभवों के साथ अध्यात्म की दिव्य प्रभा है। उनकी प्रेमपरक कविताओं में काया-भोग और मुक्ति-कामना दोनों के समानान्तर स्वर हैं। पौरुष का दर्प, प्रणय-संबंधी विशिष्ट चिंतन एवं संयोग तथा वियोग की सघन रागात्मक मुद्रायें उनके प्रेम-वर्णन में उपलब्ध हैं। 'अज्ञेय' जी के काव्य में प्रेम का अर्थ नि:शेष समर्पण है।

**'पर सब कुछ को, बाँहों में**
**समेटने के प्रयास में**
**स्वयं दे दिया जाता हूँ'**

सजग बौद्धिकता एवं आग्रहपूर्ण अस्मिता 'अज्ञेय' जी के काव्य-सृजन के प्रमुख गुण हैं। बुद्धिवाद ने उनके भावात्मक आवेश को संयमित कर उनकी अनुभूतियों को सघन प्रभावान्विति देने के साथ उन्हें एक कवि से अधिक युग-चिन्तक का व्यक्तित्व दिया। अपने अस्तित्व के प्रति एक विशेष आग्रह होने के कारण वे सामाजिक संघर्षों से सीधे नहीं जुड़ पाये हैं यद्यपि लोक-व्यथा में सहभागी होने और सामयिक संदर्भों से अपने संबद्ध होने की घोषणा वे निरन्तर करते रहे। उनकी अधिकांश कविताओं के विषय वे स्वयं हैं।

'अज्ञेय' जी का भाव-प्रसार विस्तृत है। उसमें प्रेम, दर्शन, विज्ञान, अहंवाद समाजवाद एवं विद्रोह आदि सारे स्वर समाहित हैं। आधुनिक अनेक संदर्भों को नई दृष्टि से पहिचानने, सांस्कृतिक मूल्यों एवं प्रायोगिक चेतनाओं में सामंजस्य करने, व्यष्टि शक्ति को सामाजिक प्रवाह में स्थापित करने तथा व्यंग्य एवं लघु कविताओं द्वारा युग-सत्य को साक्षात्कार करने में 'अज्ञेय' की समता करना सरल नहीं है।

अज्ञेय जी का अभिव्यक्ति पक्ष विविधता, सूक्ष्मता और ताजगी से भरा है। वे शब्द से अर्थ के सामंजस्य को ही काव्य-शिल्प का प्रयोजन मानते हैं। उनकी भाषा के प्राय: दो रूप हैं—अभिजात और लौकिक। संस्कृतनिष्ठ परिष्कृत एवं सुरुचिपूर्ण शब्दावली के समानान्तर ही तद्भव, ग्रामीण, आँचलिक एवं अन्य भाषाओं के लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी है। उन्होंने शब्द-निर्माण के साथ शब्दों को नए रूप, नए संस्कार एवं नए-संदर्भ प्रदान किए हैं। 'अज्ञेय' जी के छंद-विधान में मात्रिक-छंद, लोक-छंद एवं मुक्त छंदों की ही अधिकता है। मुक्त छंदों में सर्वत्र लय और तुक का गीतात्मक प्रवाह नहीं है। पंक्तियों में मात्रा का कोई निश्चित क्रम नहीं है। कहीं-कहीं तो हर पंक्ति में एक या दो ही शब्द हैं। छंदों की निर्मिति में कहीं पुनरावृति, कहीं क्रियापदों, कहीं संबोधनों और कहीं विशेष शब्दों पर बल देने की पद्धति का आश्रय लिया गया है। उनका मुक्त छंद विधान उनकी प्रयोगशीलता का ही प्रमाण है।

अज्ञेय जी की बिम्बयोजना प्राय: वस्तून्मुखी है। उन्होंने परम्परागत बिंबों को नया बौद्धिक संस्पर्श देकर ग्रहण किया है। ध्वनि, स्पर्श और वर्ण आदि के प्रयोग से उसे अद्भुत रमणीयता दी है। प्रतीक, अज्ञेय जी के काव्य-शिल्प का मुख्य उपादान है। उसे उन्होंने 'सत्यान्वेषण का माध्यम' तक माना है। कवि ने लिखा है "महत्त्व या मूल्य प्रतीक का या प्रतीक में नहीं होता, वह उससे मिलने वाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है।" आरंभिक प्रतीकों में धूलिकण, शिशिर कीर हारिल तथा उदास चेहरा आदि मुख्य हैं जो कवि के उपेक्षित आत्मबोध के

व्यंजक हैं। सूर्य सत्य का, और हरीघास व्यापक-जीवन-तत्व का प्रतीक है। अज्ञेय का सबसे प्रिय प्रतीक 'मछली' है जिसका अर्थ कवि ने स्वय स्पष्ट किया है, 'सेतु पर खड़े कवि की नीचे जल पर पड़ती हुई परछाँही को भेद जाने वाली प्रकाशमान मछली वह प्रतीक है जिसके द्वारा अन्वेषी स्वयं अपने अंहकार से उत्पन्न पूर्वाग्रहों की छाया के पार देख लता है।'

वस्तुत: अज्ञेय जी ने हिन्दी कविता को एक नया वैचारिक धरातल और आस्थामूलक सांस्कृतिक मूल्य देने का प्रयत्न किया है। उनकी प्रकाशित काव्य कृतियाँ इस प्रकार हैं—भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, हरी घास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार, और मैं सन्नाटा बुनता हूँ —आदि। 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य-संग्रह पर 'अज्ञेय' जी को भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

## श्री गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

मुक्तिबोध का काव्य उनके संघर्षपूर्ण जीवन का वृत्तान्त है। कवि की लड़ाई अपने निजी प्रश्नों से न होकर मानवीय अस्मिता को खडित करने वाले संदर्भों से है। कवि की दृष्टि में आज आम आदमी की नियति, विवेकहीन व्यवस्थाओं के चक्रव्यूह में, अन्यायी पर समर्थ महारथियों के बीच अकेले पड़ गये अभिमन्यु की असहाय नियति बन गई है पर इस स्थिति से लगातार जूझना और रास्ता खोजना ही आज का कवि-धर्म है।

वस्तु की दृष्टि से मुक्तिबोध की काव्यानुभूति के तीन आधार बिन्दु हैं—मध्यवर्गीय मानसिक द्वन्द्वों से साक्षात्कार, मनुष्य के अनिश्चित भविष्य की गहरी चिन्ता और एक व्यवस्थित जीवन-पद्धति की अन्तहीन तलाश। कवि ने 'तार-सप्तक' के आत्मवक्तव्य में स्वीकार किया है—'जीवन के एक ही बाजू को लेकर मैं कोई सर्वाश्रेयी दर्शन की मीनार खड़ी न कर सका···जीवन और जगत के द्वन्द्व—जीवन के आन्तरिक द्वन्द्व - इन सब को सुलझाने की और एक अनुभवसिद्ध व्यवस्थित तत्त्व प्रणाली अथवा जीवन-दर्शन आत्मसात कर लेने की दुर्दम प्यास मन में हमेशा रहा करती। आगे चलकर मेरी काव्य की गति को निश्चित करने वाला सशक्त कारण यही प्रवृत्ति थी।'

मुक्तिबोध की काव्य-सर्जना की कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ उन्हें अपने समकालीन कवियों से भिन्न करती हैं। उनकी कविता की पहली विशेषता यह है कि उनकी अनुभूतियां आद्यंत यथार्थवाद के निकट रही हैं और रोमानी संवेदना से पूर्ण मुक्त हैं। कवि का यथार्थ उसके अनुभव का अंग है। कवि स्वयं मध्यवर्ग का व्यक्ति है इसीलिए मध्यवर्गीय स्थितियों, संभावनाओं और सिद्धियों को इतने सही और सच्चे

रूप में प्रस्तुत कर सका है।) कवि के अपने शब्दों में '(मेरी ये कवितायें अपना पथ ढूँढने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन-स्थिति में छिपा है।')

कवि की दूसरी विशेषता है उसका एक निश्चित बौद्धिक दृष्टिकोण। इस बौद्धिकता के तीन मुख्य प्रदेय रहे हैं—कोरी भावुकता के स्थान पर तर्क संगत विचारों की प्रधानता, आत्मानुभवों का आज के संदर्भों में पुनर्परीक्षण और सत्तावादी मूल्य चेतनाओं को अस्वीकार कर सही जीवन पद्धति हेतु निरन्तर प्रयत्नशीलता। कवि बार बार कहता है—

**कोशिश करो**
**कोशिश करो**
**कोशिश करो**
**जीने की…… जमीन में गड़कर भी…।**

एक साफ सुथरी मानवतावाती चेतना उनकी कविताओं की तीसरी प्रमुख विशेषता है। कवि के मन में मनुष्य मात्र की हर यातना के प्रति गहरी आत्मीयता एवं निस्वार्थ संवेदना है। उन्होंने व्यक्ति को कला का केन्द्र बिन्दु मानते हुए भी उसे दिशाव्यापी बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है और इसी आस्था के कारण उनका आत्म संघर्ष, लोक संघर्ष में रूपान्तरित हो गया है। वह अन्तर्मन और विश्व मन दोनों के प्रतिपूर्ण प्रतिबद्ध है इसीलिए सम्पूर्ण समाज के कल्याण का संकल्प लेकर, अतीत, वर्तमान और भविष्य के जीवन-संदर्भों से एक साथ इतनी ईमानदारी, गहराई और अपनेपन से बँधा हुआ है कि उसके आनुभूतिक आयामो की स्वयंभुक्त विराटता अपने आप में एक उपलब्धि बन गई है। लोक-हित के यज्ञ में उसे अपना योगदान अपर्याप्त लगता है—जितना भी किया गया, उससे ज्यादा कर सकते थे। ज्यादा कर सकते थे। और उनकी यही असंतुष्टि उसे सारे के सारे खतरे उठाने के लिए निर्भय कर देती है। कवि की यही 'सद् चिद् वेदना' और 'आत्मा की यही चमकीली प्यास' उसे अपने समकालीनों से विशिष्ट कर देती है।

मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प की मुख्य विशेषता है - फैंटेसी का प्रयोग। फैंटेसी, विस्तृत कथ्य को सुविधापूर्वक व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है अर्थात बहुआयामी अनुभव को विविध व बहुसंख्यक चित्र-शृंखला में पिरो कर स्पष्ट करने की प्रणाली। मुक्तिबोध ने हमेशा एक विस्तृत कैनवास या पृष्ठभूमि का आधार लिया है इसलिए उनकी कवितायें लम्बी हो गईं और फैंटेसी का प्रयोग उनकी अभिव्यंजना की अनिवार्यता बन गई। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है '(यथार्थ के तत्त्व परस्पर गुंफित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बन कर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है और उसके तत्त्व भी परस्पर गुंफित हैं। यही कारण है कि मैं छोटी कवितायें लिख नहीं पाता और जो छोटी होती हैं वे छोटी न होकर अधूरी होती हैं।')

मुक्तिबोध ने अपने प्रतीक प्रायः इतिहास, पुराण, दर्शन और संस्कृति के साथ लोक जीवन व आसपास के परिवेश से लिए हैं और उन्हें आधुनिकता से जोड़ दिया है। ब्रह्मराक्षस-अतृप्त मन का, औरांग उटांग बर्बरता का व गर्भवती नारी तथा लकड़ी बीनती हुई औरत लोक-हित की चेतना के प्रतीक हैं। कवि के चित्रों में प्रायः एक ऐसे रहस्य, रोमांच, आतंक, चमत्कार और कौतूहल का जादुई परिवेश होता है कि पाठक सहसा स्तब्ध रह जाता है। पहाड़ों, घाटियों, गुफाओं, जंगलों, सूखी बावड़ियों व सूनी पगडंडियों के साथ बरगद, पीपल और तलाब आदि उनके चित्रों के प्रिय विषय रहे हैं।

भाषा के क्षेत्र में कवि ने एक विद्रोही शिल्पी की भूमिका निभाई है। उन्होंने अनुभूति की माँग के अनुरूप ही शब्दों के प्रयोग, शब्दों का निर्माण और उनका संस्कार किया है। अहिन्दी शब्दों, अप्रयुक्त विशेषणों एवं लोकोक्तियों से उनकी भाषा में एक आवेगपूर्ण प्रवाह है। मुक्तिबोध ने अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने के लिए बने बनाये मठों को ढहा देने की बात बारबार दुहराई है। उनमें नयापन है लेकिन रचना-प्रक्रिया की जटिलता के कारण वे अपने पाठक में एक विशेष प्रकार की प्रबुद्धता की अपेक्षा करते हैं— शायद यही कारण है कि मुक्तिबोध के काव्य का मूल्यांकन करना-कभी सहज नहीं रहा।

## श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना लोक-सम्पृक्ति के कवि हैं। उनका सम्पूर्ण सृजन सोद्देश्य है। वे समसामयिक जीवन की क्रूर त्रासदी के बीच मानवीय मूल्यों की स्थापना को कवि का पहला धर्म मानते हैं। वे अपने काव्य में एक समग्र जीवन-दर्शन लेकर चले हैं, जिसके दो आयाम हैं—प्रथम, वर्तमान का सहज सच्चा बोध और द्वितीय, भविष्य की विश्वसनीय सम्भावनायें। वर्तमान का जो चित्रण कवि ने किया उसमें पारस्परिक सम्बन्धों के विशृंखलन का त्रास, शोषित वर्ग की मरणांतक घुटन का एहसास, अनास्था और हताशा का आत्महंता वातावरण तथा जीवन के दिशा-व्यापी वैषम्य को वाणी देने का प्रयत्न किया गया है। 'जंगल का दर्द' काव्य संग्रह में आदमी के भीतर और बाहर द्वंद्व को तथा 'कुआयो नदी' में सत्ता के षडयन्त्रों को अनावृत्त किया गया है।

कवि आने वाले कल के लिए संकल्प और सक्रियता का पक्षधर है। इस दिशा में सर्वेश्वर जी की अनुभूति के तीन बिन्दु हैं—मानव-मुक्ति के प्रति विवेकपूर्ण सतर्कता, समाजवादी व्यवस्था की तर्क संगत स्वीकृति और परिवर्तन की आकांक्षा

से जुड़ी अटूट आस्था। कवि अपने समय के दर्द से बहुत गहरा जुड़ा है और यही लोकासक्ति उन्हें मनुष्य की भावी नियति को निश्चित करने की दिशा में व्यापक चिन्तन करने को बाध्य करती है। वे पीड़ा में आकंठ डूबे हुए आम आदमी के असहाय चीत्कार को ही सही ढँग से व्यक्त नहीं करते वरन ढहते हुए मूल्यों के बीच उसे अडिग खड़े रहने की सामर्थ्य देने के लिए क्रांति का आवाहन भी करते हैं :

**हम सब एक अंगार हैं, एक लपट, एक आग,**
**एक शब्द, एक अर्थ, एक राग,**
**एक चरण, एक यात्रा, एक राह,**
**एक संकल्प, एक नारा, एक चाह,**
**समर्पित**
**एक क्रांति को।**

सर्वेश्वर जी की कविता के दो विशिष्ट गुण हैं—एक तो अपने सृजन को अपने समय की माँग से जोड़ना और दूसरे अपनी अन्तर्धारा को निरन्तर गहरा करना। कवि ने लिखा है "जो सत्य है उसे चुपचाप अपनाये रहने भर से काम नहीं चलेगा, बल्कि जो असत्य है, उसका विरोध करना पड़ेगा और मुँह खोल कर कहना पड़ेगा कि यह गलत हैं। कवि में सच्चे साहित्यकार का पूरा दायित्वबोध है इसीलिए विश्वास और विद्रोह दोनों के स्वर हैं। आदमी के भविष्य के लिए सही रास्ते की तलाश से जुड़ी उनकी आन्तरिक भाव-धारा अपनी यात्रा के हर पड़ाव के साथ लगातार गहराती गई है क्योंकि उनकी आस्था में एक संकलपात्मक अन्विति मिलती है।

काव्य-शिल्प की दृष्टि से सर्वेश्वर जी की कई कमियों का संकेत 'अज्ञेय' ने 'नई कविता' पत्रिका के दूसरे अंक में किया है—"पहली कमी तंत्रकौशल की है। दूसरी बात भाषा से सम्बन्ध रखती हैं। आजकल की कविता बोलचाल की अन्विति माँगती है और वह गद्य की लय नहीं माँगती। सर्वेश्वर की कविता पंक्तियाँ केवल खण्डित गद्य की पंक्तियाँ रह जाती हैं। अनुभूति का खरापन, उक्ति की प्रभावशीलता उनमें रहती है पर कविता का सर्वांग सौन्दर्य उन्हें नहीं मिलता क्योंकि लय की बुनियादी माँग वे पूरी नहीं करतीं।" सर्वेश्वर जी ने इन तीनों आरोपों को अंशत: स्वीकारते हुए अपना स्पष्टीकरण 'तीसरा सप्तक' में दिया है—"मैं विषय-वस्तु को रूप-विधान से अधिक महत्व देता हूँ··· विषय-वस्तु और रूप-विधान दोनों के आश्चर्यजनक संतुलन के लिए जिस निपुणता की आवश्यकता है वह अभी मुझमें नहीं है···गद्य की लय मेरे अपने पढ़ने की लय से अनुशासित है, छन्द की लय से नहीं। विषय के अनुरूप ही इस लय का प्रयोग होता है—यों कहिए कि प्रयोग की विवशता होती है।···साधारण बोलचाल की भाषा में जो कवितायें नहीं लिखी जा सकतीं

उन्हें मैं अभी नहीं लिख रहा हूँ···अभी तो मेरी पूँजी एक व्यापक सम्वेदना और ऊपरी आक्रोश है जो मेरे अन्तर की सतह को छील जाता है और इसकी अभिव्यक्ति साधारण बोलचाल की भाषा से हो जाती है।

साधारण भाषा के साथ ही कवि के बिम्ब-विधान एवं प्रतीक-योजना में भी एक जाना पहचाना सीधापन है। कवि ने कहीं भी नये प्रयोगों एवं चमत्कारों के मोह में पड़कर अपनी अभिव्यक्ति को उलझाया नहीं है वरन एक प्रकार से उसकी सहजता के प्रति सतर्क रहा है—विशेषतया उनकी व्यंग्योक्तियाँ अपनी सरलता के कारण बहुत प्रभावपूर्ण बन पड़ी हैं।

उनके उपमान भी प्राय: चिरपरिचित हैं; जैसे —

**नीला जाँघिया पहने**
**चाँद सा अपना अतीत,**
**बादलों का सुथन्ना पहने**
**बिजलियों का भविष्य**
**किरनों के छाते लिए**
**टपाटप गिरती बूँदों सा वर्तमान।**

अनुभूति की तरह कवि की अभिव्यंजना भी सर्वत्र मध्यवर्गीय जीवन से जुड़ी है। कहीं-कहीं उसमें आंचलिकता का पुट भी है। कवि ने अपने शिल्प को लेकर कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया है, इसीलिए सुमित्रानन्दन पन्त ने इन्हें 'जन्मजात, अकृत्रिम और सहज प्रयत्न कवि' कहा है। सर्वेश्वर जी ने अपनी विषय-वस्तु को अपने अनगढ़ शिल्प में भी बड़ी स्पष्टता से रखा है—इसीलिए वे विषिष्ट हैं।

सर्वेश्वरदयाल जी के कुछ प्रकाशित संग्रह इस प्रकार है—काठ की घंटियाँ, बाँस का पुल, एक सूनी नाव, गर्म हवायें, कुआनो नदी, जंगल का दर्द।

## श्री भारतभूषण अग्रवाल

भारतभूषण अग्रवाल की काव्य-यात्रा व्यष्टि से समष्टि तक की एक लम्बी यात्रा है। सृजन का आरम्भ निजी दुःखात्मक रोमानी अनुभूतियों से हुआ। कवि के लिए उसकी कविता उसके कर्मभीरु मन का आश्रय स्थल थी। 'छवि के बन्धन' में उसने स्वीकार किया (संसार को सच्चा मानकर उसमें कर्म करना क्योंकि वास्तविक क्षमता और सामर्थ्य की अपेक्षा रखता है, इसीलिए मैंने कवितायें लिख कर मानों स्वप्न में अपनी अभिलाषायें पूरी कीं और संसार को मिथ्या सिद्ध किया।

कर्म से पलायन ही मेरी कविताओं का स्पन्दन रहा।' इस समय का कवि एक कल्पनाजीवी एवं पलायनवादी मनोवृत्ति का सृष्टा है।

अग्रवाल जी के काव्य का दूसरा पड़ाव आत्मालोचन का है। वे स्वप्नलोक के एकान्तवास और पराजयजन्य पश्चाताप से मुक्ति पाकर वर्जनाओं से जूझने की बात सोचने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि 'यदि कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध को स्वर देना और उसको शुभ बनाने में सहायता करना है तो कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की उस शोषण सत्ता से लड़ना होगा जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पना-विलासी बना छोड़ा है।' (तारसप्तक-पृष्ठ ८७)। अब कवि ने कविता को एक मूल्यवान अस्त्र की भाँति ग्रहण किया और अपनी आत्मपरक वैयक्तिक चेतना को सामाजिक अभिव्यक्ति से जोड़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने व्यक्ति और समाज के टूटते हुए सम्बन्धों के बीच आत्मीयता का सेतु बाँधते हुए दोनों के सामने अपनी असली पहचान के लिए जैसे कविता का निर्मल दर्पण रख दिया। 'जागते रहो' तथा 'ओ अप्रस्तुत मन' काव्य संग्रहों में यह कथ्य स्पष्ट है।

भारतभूषण जी के काव्य का तीसरा और अन्तिम बिन्दु एक प्रज्ञात्मक निष्कर्ष है अर्थात मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा। वैयक्तिक आकांक्षाओं एवं सामाजिक दायित्वों के मध्य अपनी कर्मदिशा के लिए द्विविधाग्रस्त कवि के मन ने अब अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया। उन्होंने कहा कि हमारी मुख्य समस्यायें हैं निरक्षरता, आलस्य, रूढ़िवादिता और परलोकवृत्ति और इनसे जुड़े अनन्त प्रश्नों का सही उत्तर देने के लिए साहित्यकार को ही आगे आना पड़ेगा। इसलिए आज एक ऐसे सृजन की आवश्यकता है जो गतिहीनता एवं कृत्रिमता का निराकरण कर सके। इसीलिए कवि ने आधुनिक जीवन की वक्रताओं, विसंगतियों और विरोधाभासों पर मुक्त मन से प्रहार करते हुए सुनियोजित सामूहिक संघर्ष के लिए जन-चेतना को बार-बार आमन्त्रित किया। वे व्यक्ति को उसके लघु अस्तित्व की सार्थकता का विश्वास भी देते है और उस विषपान का अटूट साहस भी, जिसके उपरान्त अमृत की प्राप्ति सुनिश्चित है। 'उतना वह सूरज' (अन्तिम काव्य-संग्रह) में उनकी कविता जन-जीवन से इतने सहज भाव में जुड़ गयी है कि वह किसी एक की बात न रहकर जन-जन की बात हो गयी है—और यह उपलब्धि अपने में विशिष्ट है।

काव्य-शिल्प के क्षेत्र में भी भारत जी अपने व्यक्तित्व और विचारो की तरह बड़े सीधे और सहज रहे हैं। अभिव्यंजना के दो अलग-अलग रूप उनके काव्य में प्रत्यक्ष हैं — प्रारम्भिक कविताओं में तो छायावादी शब्दावली, उत्तरछायावादी लोक-लय एवं प्रगतिवादी अभिधात्मकता का पुट अधिक है और बाद का शिल्प प्रयोगवादी नवीनता से सम्प्रक्त है।

भाषा के सम्बन्ध में वे व्यवहार की भाषा को ही काव्यभाषा के रूप में अधिक ग्राह्य मानते हैं और इसके लिए अंग्रेजी के बहुप्रचलित शब्दों को अपनाना ठीक समझते हैं। उनका कहना है "नये कवि को प्रचलित भाषा में ही नया अर्थ भरना है, नयी अभिव्यक्ति का माध्यम पाना है...यथार्थ की भूमि पर जो काव्य खड़ा है उसका माध्यम यथार्थ भाषा ही हो सकती है, शब्दकोश की भाषा नहीं।" (तार-सप्तक पृष्ठ ११२)। छन्द के क्षेत्र में आपने एक नया प्रयोग किया है 'तुक्तक'। अपने तुक्तकों के संग्रह 'कागज के फूल' में उन्होंने इसके सृजन की प्रेरणा का स्रोत अंग्रेजी के कवि लीअर और उनके लिमरिक बताये हैं और उसी के अनुकरण पर ये तुक्तक लिखे। उनका बाहरी स्वरूप वही था—पहली दूसरी और पाँचवी पंक्तियाँ बड़ी, तीसरी और चौथी छोटी—दोनों पंक्ति वर्ग अपनी-अपनी तुक योजना से सम्बद्ध। तुक्तक का लक्ष्य मात्र मनोरंजन था, एक प्रकार के निरर्थक हास्य का आनन्द जैसे—



**तीन गुण हैं विशेष, कागज के फूल में,**
**एक तो वे उगते नहीं हैं, कभी धूल में,**
**दूजे झड़ते नहीं**
**काँटे गड़ते नहीं**
**तीजे आप चाहें उन्हें लगा लें बबूल में**

इन तुक्तकों में कहीं-कहीं व्यक्ति और समाज के कुछ पक्षों पर गहरा व्यंग्य मिलता है।

सशक्त और सटीक प्रतीक-योजना भारत जी के काव्य-शिल्प की एक रेखांकित विशेषता है। कागज के फूल, नदी, चट्टान, दीप आदि प्रतीकों का प्रयोग उन्होंने नए अर्थों और संदर्भों में किया है। उनके बिंब-विधान में एक अपना नयापन है :

**मार बिजली की कटारी**
**मर गये बादल**
**टपकते खून से धरती नहायी**
**रंग गया लोहित क्षितिज का आसमान**

भारतभूषण जी ने मुक्तक भी लिखे हैं और अत्यंत लघु आकार की कवितायें भी। यह छोटी कवितायें सुभाषितों और सूक्तियों की तरह कवि के जीवन भर के निष्कर्षों को बड़ी सहजाता से व्यक्त करती हैं :

**समतल में ही सब अकड़ते इतराते है**
**आदमी तो आदमी**
**पहाड़ों पर पेड़ भी सीधे हो जाते हैं।**

सीप में मोती की तरह उनके ये कथन बड़े पानीदार हैं। भारत जी की व्यंजना अपने सभी उपादानों में सहज और सार्थक है।

भारत भूषण अग्रवाल के कुछ प्रकाशित संकलन इस प्रकार हैं– छवि के बंधन, जागते रहो, मुक्ति-मार्ग, ओ अप्रस्तुत मन, कागज के फूल, अनुपस्थित लोग, एक उठा हुआ हाथ, उतना वह सूरज है।

# अस्मिता

## पाठ संकलन

* अज्ञेय
* गजानन 'मुक्तिबोध'
* सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
* भारतभूषण अग्रवाल

श्री अज्ञेय

# यह दीप अकेला

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर कौन गायेगा ?
पनडुब्बा : ये मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा ?
यह समिधा : ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग-संचय,
यह गोरस : जीवन-कामधेनु का अमृत-पूत पय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्रकृत, स्वयंभू, ब्रह्म, अयुत,
इसको भी शक्ति को दे दो।
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

यह वह विश्वास, नहीं जो अपनी लघुता में भी काँपा,
वह पीड़ा, जिस की गहराई को स्वयं उसी ने नापा;
कुत्सा, अपमान, अवज्ञा के धुँधुआते कड़ुवे तम में
यह सदा-द्रवित, चिर-जागरूक, अनुरक्त नेत्र,
उल्लम्ब बाहु, यह चिर-अखंड अपनापा।

जिज्ञासु, प्रबुद्ध, सदा श्रद्धामय,
इसको भक्ति को दे दो :
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।

## होने का सागर

सागर जो गाता है
वह अर्थ से परे है—
वह तो अर्थ को टेर रहा है।

हमारा ज्ञान जहाँ तक जाता है,
जो अर्थ हमें वहलाता है (कि सहलाता) है
वह सागर में नहीं,
हमारी मछली में है
जिसे सभी दिशा में
सागर घेर रहा है।

आह, यह होने का अन्तहीन, अर्थहीन सागर
जो देता है सीमाहीन अवकाश
जानने की हमारी गति को :
आह यह जीवित की लघु, विद्युद्-द्रुत सोन-मछली
केवल-मात्र जिसकी बलखाती गति से
हम सागर का नापते क्या, पहचानते भी हैं!

## मथो

यह अन्तर मन
यह वाहर मन
यह बीच
कलह की
नहीं, जड़ नहीं ! —मन्थानी।

मथो, मथो,
ग्रो मनो मथो
इस होने के सागर को
जो बँट चला ग्राज
देवों-ग्रसुरों के बीच !

ग्रब लो निकाल जो निकले
गागर भर।
ग्रावे जब तर
तै कर लेना
क्या निकला यह ?
ग्रमृत ? हलाहल ?

## पक्षधर

इन्सान है कि जनमता है
ग्रौर विरोध के वातावरण में ग्रा गिरता है :
उसकी पहली साँस संघर्ष का पैंतरा है
उसकी पहली चीख एक युद्ध का नारा है
जिसे यह जीवन-भर लड़ेगा।

हमारा जन्म लेना ही पक्षधर बनना है,
जीना ही क्रमशः यह जानना है
कि युद्ध ठनना है
ग्रौर अपनी पक्षधरता में
हमें पग पग पर पहचानना है
कि ग्रब से हमें हर क्षण में, हर बार में, हर क्षति में,
हर दुःख-दर्द, जय-पराजय, गति-प्रगति में
स्वयं ग्रपनी नियति बन
ग्रपने को जनना है।

ईश्वर
एक बार का कल्पक

और सनातन क्रान्ता है :
माँ
एक वार की जननी
और आजीवन ममता है :
पर
उनकी कल्पना, कृपा और करुणा से
हममें यह क्षमता है
कि अपनी व्यथा और अपने संघर्ष में
अपने को अनुक्षण जनते चलें,
अपने संसार को अनुक्षण बदलते चलें,
अनुक्षण अपने को परिक्रान्त करते हुए,
अपनी नयी नियति वरते चलें।

पक्षधर
और चिरन्तन
हमें लड़ना है निरन्तर,
आमरण अविराम --
पर सर्वदा जीवन के लिए :
अपनी हर साँस के साथ
पनपते इस विश्वास के साथ
कि हर दूसरे की हर साँस को
हम दिला सकेंगे और अधिक सहजता,
अनाकुल उन्मुक्ति और गहरा उल्लास।

अपनी पहली साँस और चीख के साथ
हम जिस जीवन के
पक्षधर बने अनजाने ही,
आज होकर सयाने
उसे हम वरते हैं :
उसके पक्षधर हैं हम --
इतने घने
कि उसी जीने और जिलाने के लिए
स्वेच्छा से मरते हैं।

# देह-वल्ली

देह —
वल्ली ।
रूप को
एक वार बेझिझक देख लो ।
पिंजरा है ? पर मन इसी में से उपजा ।
जिसकी उन्नीत शक्ति आत्मा है ।

देखो देह —
वल्ली ।
भव्य वीज रूपाकारों का :
'निर्गन्धा इव किंशुका :'
गन्ध के उपभोक्ता किन्तु कहें तो
कब हम वसन्त के उन्मेष को
नहीं उस एक संकेत से पहचान सके ?
कब वह नहीं हुआ
जीवन के चिरन्तन
स्वयम्भाव का प्रतीक ?
देखो
व्रीडाहीन : इस कान्ति को
आँखों में समेट लो ।
देखो

रूप —
नाम-हीन
एक ज्योति
अस्मिता इयत्ता की
ज्वाला
अपराजिता अनावृता ।

## कलगी बाजरे की

हरी बिछली घास
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की ।
ग्रगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की ग्रकेली तारिका
ग्रब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार न्हायी कुईं,
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है ।

बल्कि केवल यही :
कि ये उपमान मैले हो गये हैं ।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच ।

कभी बासन ग्रधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है ।
मगर क्या तुम
नहीं पहचान पाग्रोगी :
तुम्हारे रूप के—
तुम हो, निकट ही, इसी जादू के
निजी किस सहज, गहरे बोझ से,
किस प्यार से मैं कह रहा हूँ—
ग्रगर मैं यह कहूँ—
बिछली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरी बाजरे की ?

ग्राज हम शहरातियों को
पालतू मालंच पर सँवरी जुही के फूल से
सृष्टि के विस्तार का-ऐश्वर्य का—
ग्रौदार्य का—

कहीं सच्चा, कहीं प्यारा —
एक प्रतीक
बिछली घास है,
या शरद की साँझ के सूने गगन की पीठिका पर
दोलती कलगी अकेली बाजरे की।

और सचमुच, इन्हें जब-जब देखता हूँ
यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है—
और मैं एकान्त होता हूँ
समर्पित।
शब्द जादू हैं —
मगर क्या यह समर्पण कुछ नहीं है ?

## बना दे, चितेरे

बना दे, चितेरे,
मेरे लिए एक चित्र बना दे।

पहले सागर आँक :
विस्तीर्ण, प्रगाढ़ नीला,
ऊपर हलचल से भरा,
पवन के थपेड़ों से आहत,
शत-शत तरंगों से उद्वेलित,
फेनोर्मियों से टूटा हुआ, किन्तु प्रत्येक टूटने में
अपार शोभा लिए हुए,
चंचल, उत्सृष्ट,
—जैसे जीवन।

हाँ, पहले सागर आँक :
नीचे अगाध, अथाह
असंख्य दबावों, तनावों, खींचों और मरोड़ों को

अपनी द्रव एकरूपता में समेटे हुए,
असंख्य गतियों और प्रवाहों को
अपने अखंड शौर्य में समाहित किए हुए
स्वायत्त,
अचंचल,
—जैसे जीवन……
सागर आँक कर फिर आँक एक उछली हुई मछली :
ऊपर अधर में
जहाँ ऊपर भी अगाध नीलिमा है
तरंगोर्मियाँ हैं, हलचल और टूटन है,
द्रव है, दबाव है,
और उसे घेरे हुए वह अविकल सूक्ष्मता है
जिसमें सब आन्दोलन स्थिर और समाहित होते हैं,
ऊपर अधर में
हवा का एक बुलबुला भर पीने को
उछली हुई मछली
जिसकी मरोड़ी हुई देह-वल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है।
जैसे तडिल्लता में दो बादलों के बीच के खिंचाव सब
कौंध जाते हैं—

वज्र अनजाने, अप्रसूत, असन्धीत सब
गल जाते हैं :
उन प्राणों का एक बुलबुला-भर पी लेने को—
उस अनन्त नीलिमा पर छाये रहते ही
जिसमें वह जनमी है, जियी है, पली है, जियेगी,
उस दूसरी अनन्त प्रगाढ़ नीलिमा की ओर
विद्युल्लता की कौंध की तरह
अपनी इयत्ता की सारी आकुल तड़प के साथ उछली हुई
एक अकेली मछली।

बना दे, चितेरे,
यह चित्र मेरे लिए आँक दे।
मिट्टी की बनी, पानी से सिंची, प्राणाकाश की प्यासी
उस अन्तहीन उदीषा को
तू अन्तहीन काल के फलक पर टाँक दे—
क्योंकि यह माँग मेरी, मेरी है कि प्राणों के
एक जिस बुलबुले की ओर मैं हुआ हूँ उदग्र, वह
अन्तहीन काल तक मुझे खींचता रहे
मैं उदग्र ही बना रहूँ कि
—जाने कब—
वह मुझे सोख ले।

गजानन माधव मुक्ति-बोध

# दूर तारा

तीव्र गति
अति दूर तारा
वह हमारा
शून्य के विस्तार नीले में चला है।

और नीचे लोग
उसको देखते हैं, नापते हैं गति, उदय औ' अस्त का
इतिहास।

किन्तु इतनी दीर्घ दूरी
शून्य के उस कुछ न होने से बना जो नील का आकाश,
वह एक उतर
दूरबीनों के सतत आलोचनाओं को,
नयन-आवर्त्त के सीमित निदर्शन या कि दर्शन यत्न को।
वे नापने वाले लिखें उनके उदय औ' अस्त की गाथा,
सदा ही ग्रहण का विवरण।
किन्तु वह तो चला जाता
व्योम का राही,
भले ही दृष्टि से बाहर रहे उसका विपथ ही
बना जाता।
और जाने क्यों,
मुझे लगता कि ऐसा ही अकेला नील तारा,
तीव्र-गति,
जो शून्य में निस्संग,
जिसका पथ विराट –
वह छिपा प्रत्येक उर में,
प्रति हृदय के कल्मषों के बाद

जैसे बादलों के बाद भी है शून्य नीलाकाश।
उसमें भागता है एक तारा,
जो कि अपने ही प्रगति-पथ का सहारा,
जो कि अपना ही स्वयं वन चला चित्र,
भीतिहीन विराट-पुत्र।
इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूँ।

## नूतन अहं (नया अहंकार)

कर सको घृणा
क्या इतना
रखते हो अखंड तुम प्रेम ?
जितनी अखंड हो सके घृणा
उतना प्रचंड
रखते क्यों जीवन का व्रत नेम ?
प्रेम करोगे सतत ? कि जिससे
उस से उठ ऊपर वह लो
ज्यों जल पृथ्वी के अन्तरंग
में धूम निकल झरता निर्मल वैसे तुम ऊपर वह लो ?
क्या रखते अन्तर में तुम इतनी ग्लानि
कि जिससे मरने और मारने को रह लो तुम तत्पर ?
क्या कभी उदासी गहिर रही
सपनों पर, जीवन पर छायी
जो पहना दे एकाकीपन का लौह वस्त्र, आत्मा के तन पर ?
है खत्म हो चुका स्नेह-कोष सब तेरा
जो रखता था मन में कुछ गीलापन
और रिक्त हो चुका सर्व-रोष
जो चिर-विरोध में रखता था आत्मा में गर्मी, में सहज भव्यता,
मधुर आत्म-विश्वास।
है सूख चुकी वह ग्लानि

जो आत्मा को बेचैन किये रखती थी अहोरात्र
कि जिससे देह सदा अस्थिर थी, आँखें लाल, भाल पर
तीन उग्र रेखायें, अरि के उर में तीन शलाकाएँ सुतीक्ष्ण,
किन्तु आज लघु स्वार्थों में घुल, क्रन्दन-विह्वल,
अन्तर्मन यह टार रोड के अन्दर नीचे बहने वाली गटरों से भी
है अस्वच्छ अधिक,
यह तेरी लघु विजय और लघु हार।
तेरी इस दयनीय दशा का लघुतामय संसार
अहंभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में
जैसे घूरे पर उट्ठा है
धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त।

## मेरे लोग

अ

जिन्दगी की कोख में जनमा
नया इस्पात
दिल के खून में रंग कर।

आ

तुम्हारे शब्द मेरे शब्द
मानव-देह धारण कर
असंख्यक-स्त्री-पुरुष-बालक
बने, जग में, भटकते हैं,
कहीं जनमें
नए इस्पात को पाने।
झुलसते जा रहे हैं आग में
या मुँद रहे हैं धूल-धक्कड़ में,
किसी की खोज है उनको,
किसी नेतृत्व की।
पीली धुमैली पसलियों के पंजरों वाली

उदासी से पुती गायें
भयानक तड़फड़ाती ठठरियों की
आत्मवश स्थितप्रज्ञ कवितायें
उपेक्षित काल-पीड़ित सत्य के समुदाय
या गो यूथ
लेकर वे
घुसे ही जा रहे हैं
आशिए के बेस्ट वाली उन दूकानों के पास
काफे की निकटवर्ती सड़क पर,
चमचमाती खूबसूरत शान की नायलॉन भब्भड़ में।
दुतरफा पेड़ वाली रम्य किंग्सवे में
कि एलगिन रोड नुक्कड़ पर
खरोंचे मारते-सी घिस रहे सी
सौ खुरों की खरखराती शब्द गति
सुनकर
खड़े ही रह गये हैं लोग।
उनमें सैकड़ों विस्मित,
कई निस्तब्ध।
कुछ भयभीत, जाने क्यों
समूचे दृश्य से मुँह मोड़ यह कहते—
हटाओ ध्यान, हमसे वास्ता क्या है!
कि वे दुःस्वप्न आकृतियाँ
असद हैं, घोर मिथ्या हैं।।
दलिद्दर के शनिश्चर का
भयानक प्रोपगण्डा है।।
खुरों के खरखराते खुरचते पद-शब्द स्वर-समुदाय
सुनकर,
दौड़कर उन होटलों पर,
द्वार देहली-गैलरी पर,
खिड़कियों में या छतों पर

जो इकट्ठा हैं
गिरस्तिन मौन माँ-बहनें
सड़क पर देखती हैं
भाव-मन्थर काल-पीड़ित ठठरियों की श्याम गो-यात्रा
उदासी से रंगे गम्भीर मुरझाये हुये प्यारे
गऊ-चेहरे
निरख कर,
पिघल उठता मन ।।
रुलाई गुप्त कमरे में हृदय के उमड़ती सी है।
नहीं आये समझ में सत्य जो शिक्षित
सुसंस्कृत बुद्धिमानों दृष्टिमानों के
उन्हें वे हैं कि मन-ही-मन
सहज पहचान लेतीं !!
मग्न होकर ध्यान करती हैं कि
अपने बालकों को छातियों से और चिपकातीं।
भोले भाव की करुणा बहुत ही क्रान्तिकारी सिद्ध होती है।
उपेक्षित काल-पीड़ित सत्य के समुदाय,
लेकर साथ
मेरे लोग
असंख्य स्त्री-पुरुष बालक भटकते हैं
किसी की खोज है उनको
अटकना चाहते हैं द्वार-देहली पर किसी के किन्तु
मीलों-दूरियों के डैश खिंचते हैं
अँधेरी खाइयों के मुँह बगासी जोर से लेकर
यूँ ही बस देख
अनपहचानती आँखों—
खुले रहते।

गन्दी बस्तियों के पास नाले पार
बरगद है
उसी के श्याम तल में वे

रंभाती कई गायें।
कि पत्थर-ईंट के चूल्हे सुलगते हैं।
फुदकते हैं वहीं दो-चार
बिखरे बाल वाले बालकों के श्याम गन्दे तन
व लोहे की बनी स्त्री-पुरुष आकृतियाँ
दलिद्दर के भयानक देवता के भव्य चेहरे वे
चमकते धूप में ॥
मुझको है भयानक ग्लानि
निज के श्वेत वस्त्रों पर
स्वयं की शील-शिक्षा-सत्य-दीक्षा के
विरोधी अस्त्र-शस्त्रों पर

कि नगरों के सुसंस्कृत सौम्य चेहरों से
उचटता मन
उतारूँ आवरण—
यह साफ गहरा दूधिया कुरता
व चूने की सफेदी में चिलकते-से सभी कपड़े
निकालूँगा।

किसी ने दूर से मुझको पुकारा है।
गन्दी बस्तियों के पास, नाले पार
घुमटी एक,
जिसके तंग कमरे में
जरा-सा पुस्तकालय वाचनालय है।
पहुँचता हूँ। अचानक ग्रन्थ
कोई खोलता ही हूँ कि
पृष्ठों के हृदय में से
उभरते काँपते हैं वायलिन के स्वर
सहज गुंजारती झनकार
गहरे स्नेह सी।
मीठी सघन विस्तृत भटकती गूँज

जिसकी सान्द्र ध्वनि में से
सुकोमल रश्मियों के पुंज।।
तेजोद्भास
मन खुलता, स्वयं की ग्रन्थियाँ खुलतीं ! !

कि इतने में फटी-सी ग्रन्थ पुस्तक
खोलता सा हूँ कि
पृष्ठों के जिगर में से
भयानक डाँट
कोई भव्य विश्वात्मक तडित् आघात
सहसा बोध होता है
उभरता क्रोध निःस्वात्मक
सहज तन कर गरजता
जिन्दा की कोख में जनमा
नया इस्पात
जिसके खूँन में रंग कर ! !
तुम्हारे स्वर कहाँ हैं,
ओ ! !

## पता नहीं.........

पता नही कब, कौन, कहाँ किस ओर मिले ! !
किस साँझ मिले, किस सुबह मिले ।।
यह राह जिन्दगी की
जिससे जिस जगह मिले
है ठीक वहीं, वस वहीं अहाते मेंहदी के
जिनके भीतर
है कोई घर,
बाहर प्रसन्न पीली कनेर
बरगद ऊँचा, जमीन गीली ! !

मन जिन्हें देख कल्पना करेगा जाने क्या !!
तब बैठ एक
गम्भीर वृक्ष के तले
टटोलो मन, जिससे जिस छोर मिले,
कर अपने-अपने तप्त अनुभवों की तुलना
घुलना मिलना !!

यह सही है कि चिलचिला रहे फासले,
तेज दुपहर भूरी
सब ओर गरम धार-सा रेंगता चला
काल बाँका-तिरछा ;
पर, हाथ तुम्हारे में जब भी मित्र का हाथ
फैलेगी बरगद-छाँह वहीं
गहरी-गहरी सपनीली-सी
जिसमें खुलकर सामने दिखेगी उरस्-स्पृशा
स्वर्गीय उषा.........
लाखों आँखों से, गहरी अन्तःकरण तृषा
तुमको निहारती बैठेगी
आत्मीय और इतनी प्रसन्न,
मानव के प्रति, मानव के
जी की पुकार
जितनी अनन्य !

लाखों आँखों से तुम्हें देखती बैठेगी
वह भव्य तृषा
इतने समीप
ज्यों लाली-भरा पास बैठा हो आसमान
आँचल फैला,
अपनेपन की प्रकाश-वर्षा
में रुधिर-स्नात हँसता समुद्र
अपनी गम्भीरता के विरुद्ध चंचल होगा।

मुख है कि मात्र आँखें हैं वे आलोक भरी,
जो सतत तुम्हारी थाह लिए होतीं गहरी,
इतनी गहरी
कि तुम्हारी थाहों में अजीब हलचल,
मानो अनजाने रत्नों की
अनपहचानी-सी चोरी में
धर लिए गए,
निज में बसने, कस लिये गये ।
तब तुम्हें लगेगा अकस्मात्,
..............
ले प्रतिभाओं का सार, स्फुलिंगों का समूह
सबके मन का
जो एक बना है अग्नि-व्यूह
अन्तस्तल में,
उस पर जो छायी हैं ठण्डी
प्रस्तर-सतहें
सहसा काँपीं, तड़कीं, टूटीं
औ' भीतर का वह ज्वलत् कोष
ही निकल पड़ा !!
उत्कलित हुआ प्रज्वलित कमल !!
यह कैसी घटना है ........
कि स्वप्न की रचना है ।
उस कमल-कोष के पराग-स्तर
पर खड़ा हुआ
सहसा होता है प्रकट एक
वह शक्ति-पुरुष
जो दोनों हाथों आसमान थामता हुआ
आता समीप अत्यन्त निकट
आतुर उत्कट
तुमको कंधे पर बिठला ले जाने किस ओर
न जाने कहाँ व कितनी दूर !!

फिर वही या  ा सुदूर की,
फिर वही भटकती हुई खोज भरपूर की,
कि वही आत्मचेतस अन्तः सम्भावना,
........ जाने किन खतरों से जूझे जिन्दगी !!
अपनी धकधक
में दर्दीले फैले-फैलेपन की मिठास,
या निःस्वात्मक विकास का युग
जिसकी मानव-गति को सुनकर
तुम दौड़ोगे प्रत्येक व्यक्ति के
चरण-तले जनपथ बनकर !!

वे आस्थायें तुमको दरिद्र करवायेंगी
कि दैन्य ही भोगोगे
पर, तुम अनन्य होगे,
प्रसन्न होगे !!
आत्मीय एक छवि तुम्हें नित्य भटकायेगी
जिस जगह, जहाँ जो छोर मिले
ले जायेगी.........
......पता नहीं, कब, कौन, कहाँ, किस ओर मिले ।

## अँधेरे में (कुछ अंश)

जिन्दगी के .....
कमरों में अँधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार;
आवाज पैरों की देती है सुनाई
बार-बार...   बार-बार,
वह नहीं दीखता... .....नहीं ही दीखता,
किन्तु, वह रहा घूम
तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक,

भीत-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अन्धकार ध्वनि-सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार कोई एक,
और मेरे हृदय की धक्-धक्
पूछती है—वह कौन
सुनाई जो देता, पर नहीं देता दिखाई !
इतने में अकस्मात गिरते हैं भीत से
फूले हुए पलिस्तर,
खिरती है चूने-भरी रेत
खिसकती हैं पपड़ियाँ इस तरह –
खुद-ब-खुद
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,
स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवाल पर,
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु,
कोई अनजानी अनपहचानी आकृति।
कौन वह दिखाई जो देता, पर
नहीं जाना जाता है !!
कौन मनु ?
..............
वह रहस्यमय व्यक्ति,
अब तक न पाई गई मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज संभावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिभाओं की,
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिमा।

२

सूनापन सिहरा,
ग्रँधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे,
शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,
मेरे ही उर पर, धँसती हुई सिर,
छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें
मीठी है दुःसह !!
ग्ररे, हाँ, साँकल ही रह-रह
बजती है द्वार-पर।
कोई मेरी बात मुझे बताने के लिए ही
बुलाता है —बुलाता है
हृदय को सहला मानो किसी जटिल
प्रसंग में सहसा होठों पर
होठ रख, कोई सच-सच बात
सीधे-सीधे कहने को तड़प जाय, ग्रौर फिर
वही बात सुन कर धँस जाय मेरा जी—
इस तरह साँकल ही रह रह बजती है द्वार पर
ग्राधी रात, इतने ग्रँधेरे में, कौन ग्राया मिलने ?
विमन प्रतीक्षातुर कुहरे में घिरा हुग्रा
दयुतिमय मुख—वह प्रेम भरा चेहरा—
भोला-भाला भाव--
पहचानता हूँ बाहर जो खड़ा है !!
यह वही व्यक्ति है, जी हाँ।
जो मुझे तिलस्मी खोह में दिखा था।
ग्रवसर-ग्रनवसर
प्रकट जो होता ही रहता
मेरी सुविधाग्रों का तनिक न ख्याल कर ।
चाहे जहाँ, चाहे जिस समय उपस्थित,
चाहे जिस रूप में
चाहे जिन प्रतीकों में प्रस्तुत,

इशारे से बताता है, समझाता रहता,
हृदय को देता है बिजली के झटके ।।
अरे, उसके चेहरे पर खिलती हैं सुबहें,
गालों पर चट्टानी चमक पठार की
आँखों में किरणीली शान्ति की लहरें,
उसे देख, प्यार उमड़ता है अनायास ।
लगता है—दरवाजा खोल कर
बाँहों में कस लूँ
घुल जाऊँ, मिल जाऊँ लिपट कर उससे
परन्तु, भयानक खड्डे के अँधेरे में आहत
और छत-विक्षत मैं पड़ा हुआ हूँ,
शक्ति ही नहीं है कि उठ सकूँ जरा भी
(यह भी तो सही है कि
कमजोरियों से ही लगाव है मुझको)
इसीलिए टालता हूँ उस मेरे प्रिय को,
कतराता रहता,
डरता हूँ उससे ।
वह बिठा देता है तुंग शिखर के
खतरनाक, खुरदुरे कगार तट पर
शोचनीय स्थिति में ही छोड़ देता मुझको ।
कहता है--"पार करो पर्वत-सन्धि के गह्वर,
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर-कगार पर स्वयं ही पहुँचो ।"
अरे भाई, मुझे नहीं चाहिये शिखरो की यात्रा,
मुझे डर लगता है ऊँचाइयों से
बजने दो साँकल !!
उठने दो अँधेरे में ध्वनियों के बुलबुले,
वह जन वैसे ही
आप चला जायेगा आया था जैसा ।
खड्डे के अँधेरे में मैं पड़ा रहूँगा,

पीड़ाएँ समेटे !!
क्या करूँ, क्या नहीं करूँ मुझे बताओ,
इस तम-शून्य में तैरती है जगत्-समीक्षा
की हुई उसकी
(सह नहीं सकता)
विवेक-विक्षोभ महान् उसका
तम-अन्तराल में (सह नहीं सकता)
अँधियारे मुझमें द्युति-आकृति-सा
भविष्य का नक्षा दिया हुआ उसका
सह नहीं सकता !!
नहीं, नहीं, उसको मैं छोड़ नहीं सकूँगा,
सहना पड़े मुझे चाहे जो भले ही।
...... ........ .................
अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब।
पहुँचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेंगी बाँहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण-कमल एक
ले जाने उसको धँसना ही होगा
झील के हिम-शीत सुनील जल में
चाँद उग आया है
गलियों की आकाशी लम्बी-सी चीर में
तिरछी है किरनों की मार
उस नीम पर
जिसके कि नीचे
मिट्टी के गोल चबूतरे पर, नीली
चाँदनी में कोई दिया सुनहला
जलता है मानो कि स्वप्न ही साक्षात्
अदृश्य साकार।

श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

## धीरे-धीरे

भरी हुई बोतलों के पास
खाली गिलास सा
मैं रख दिया गया हूँ।

धीरे-धीरे अँधेरा आयेगा
और लड़खड़ाता हुआ
मेरे पास बैठ जायेगा।
वह कुछ कहेगा नहीं
मुझे बार-बार भरेगा
खाली करेगा,
भरेगा—खाली करेगा,
और अन्त में
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सा
छोड़ जायेगा।

मेरे दोस्तो।
तुम मौत को नहीं पहचानते
चाहे वह आदमी की हो
या किसी देश की।
चाहे वह समय की हो
या किसी वेश की
सब-कुछ धीरे-धीरे ही होता है
धीरे-धीरे ही बोतलें खाली होती हैं
गिलास भरता है,

हाँ, धीरे-धीरे ही
आत्मा खाली होती जाती है
आदमी मरता है ।

उस देश का मैं क्या करूँ
जो धीरे-धीरे लड़खड़ाता हुआ
मेरे पास बैठ गया है ।

मेरे दोस्तो !
तुम मौत को नहीं पहचानते
धीर-धीरे अँधेरे के पेट में
सब समा जाता है,
फिर कुछ बीतता नहीं
बीतने को कुछ रह भी नहीं जाता
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सा सब पड़ा रह जाता है—
झंडे के पास देश
नाम के पास आदमी
प्यार के पास समय
दाम के पास वेश,
सब पड़ा रह जाता है
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सा ।

'धीरे-धीरे' —
मुझे सख्त नफरत है
इस शब्द से ।
धीरे-धीरे ही घुन लगता है
अनाज मर जाता है,
धीरे-धीरे ही दीमकें सब-कुछ चाट जाती हैं
साहस डर जाता है ।

धीरे-धीरे ही विश्वास खो जाता है
संकल्प सो जाता है ।

मेरे दोस्तो ।
मैं उस देश का क्या करूँ
जो धीरे-धीरे
धीरे-धीरे खाली होता जा रहा है
भरी बोतलों के पास
खाली-गिलान-सा
पड़ा हुआ है ।

धीरे-धीरे
अब मैं ईश्वर भी नहीं पाना चाहता,
धीरे-धीरे
अब मैं स्वर्ग भी नहीं जाना चाहता,
धीरे-धीरे
अब मुझे कुछ भी नहीं है स्वीकार
चाहे वह घृणा हो चाहे प्यार ।

मेरे दोस्तो !
धीरे-धीरे कुछ नहीं होता
सिर्फ मौत होती है,
धीरे-धीरे कुछ नहीं आता
सिर्फ मौत आती है ।
धीरे-धीरे कुछ नहीं मिलता
सिर्फ मौत मिलती है ।
मौत --
खाली बोतलों के पास
खाली गिलास-सी ।
सुनो,
ढोल की लय धीमी होती जा रही है
धीरे-धीरे एक क्रान्ति-यात्रा

शव-यात्रा में वदल रही है।
सड़ाँध फैल रही है—
नक्शे पर देश के
ग्रौर ग्राँखों में प्यार के
सीमान्त धुँधले पड़ते जा रहे हैं
ग्रौर हम चूहों-से देख रहे हैं।

## भेड़िया-३

भेड़िया फिर ग्रायेंगे।

ग्रचानक
तुममें से ही कोई एक दिन
भेड़िया वन जायेगा
उसका वंश वढ़ने लगेगा।

भेड़िए का ग्राना जरूरी है
तुम्हें खुद को पहचानने के लिए
निर्भय होने का सुख जानने के लिए
मशाल उठाना सीखने के लिए।

इतिहास के जंगल से
हर बार भेड़िया माँद से निकाला जायेगा।
ग्रादमी साहस से, एक होकर,
मशाल लिए खड़ा होगा।

इतिहास जिन्दा रहेगा
ग्रौर तुम भी
ग्रौर भेड़िया ?

## सामाजिक अभिव्यक्ति

कमल आत्मनिष्ठ है
अहं से भरा,
सतह से ऊपर उठ कर
अकेला डोलता है।
सीप परिधि-धर्मी
तलवासी
सतत ज्ञान रहित
गहराई चूमता है।
ओ भाई !
आओ बनें काई –
सतह पर फैलें,
स्वयं को व्यापकता दें – विस्तार दें,
जन्म दिया है जिसने
सच्चे अर्थ में उस जल को तार दें।

## रूप-दर्शन

वर्षा से धुले नीले आकाश में
हर क्षण आकर बदलते भागते
सफेद मेघ-खंडों-सी यह तुम्हारी दृष्टि;
शीशे के जार में
दौड़ती फिरती नन्हीं सुर्ख मछली-सी
यह तुम्हारी मुस्कान;
तेज हवा के झोंकों से
झील की सुनहरी सतह को
झुक-झुक कर चूमते, लहरते
वेत-कुंजों-सी यह तुम्हारी हँसी;
सुबह की तरह

हर क्षण ताजगी ये भरी
आलोकमय होती हुई
ये तुम्हारी मुद्राएँ;
संध्या के विविध
दृश्य रंगों के परिधानों-सी
यह तुम्हारी रुचि;
ऋतुओं की तरह
यह तुम्हारा आना-जाना;
नियति की तरह
यह तुम्हारा उठना-बैठना—
मुझे उस विराट सागर के सामने
हर क्षण खड़ा कर देता है
जिसके लिए मेरी भुजाएँ
बड़ी-छोटी दीखती हैं।

## राह निकलेगी

संशय —
इस भाव को मिटा दो
रोशनी जल उठेगी
तुममें निर्भय !

पीठ पर रखा छूरा
लगेगा प्रोत्साहन का स्पर्श
और तुम बिजली की तरह
आगे बढ़ जाओगे अक्षय।

उस आँख में देखो
अपनी आँख
लौ तेज होगी
बनेगी एक दृष्टि-लय।

उस हाथ में रख दो
अपना हाथ
सेतु निर्मित होगा
मिटेगा प्रलय ।

विपत्ति में
तुम अकेले नहीं हो,
असंख्य सोते कुलबुलाते हैं
चट्टानों में
मिल कर एक धारा बनने को,
इसे पहचानो
राह निकलेगी निश्चय ।

## कुआनो नदी (कुछ अंश)

पानी चढ़ रहा है :
खून खौल रहा है,
बहुत करीब आ गया है
ख़तरे का निशान ।
निर्मल नहीं होती कोई बाढ़ —
उफान है, भँवर है,
गंदगी है, अंधा वेग है,
न जाने कहाँ-कहाँ से
बहता आता कूड़ा कतवार है,
आँखों के आगे आक्षितिज
फैला है जूझता मटियाला प्रवाह –
मेरी निगाह कुछ कमजोर हो गयी है ।

आधी रात वह मेरी साँकल खटखटाता है,
'किसी भी समय बाँध टूट सकता है
निकल चलो मेरे साथ........'

लेकिन मैं शब्दों को संदूक की तरह
मेज पर कुर्सियाँ और कुर्सियों पर
चारपाइयाँ रख कर जमाता हूँ।
'यह लड़ाई अब नहीं चलेगी
बहुत करीब आ गया है
ख़तरे का निशान।'
उसकी आँखें व्यंग्य से मेरी ओर देखती हैं।

मुझमें अभी भी
बहुत कुछ बचा ले जाने का मोह है
और नदी को सब कुछ तोड़ने का जोश।
मुझे उसकी आँखों में
सुबह के अखबारों की सुर्खी दिखाई देती है
और मैं देश के नेताओं के चित्र
शृंगारदान से बाँध
उसे रस्सी के सहारे
लाश की तरह छत की कड़ी से लटका देता हूँ।

'उन्होंने अपनी रक्षा का इन्तजाम कर लिया है
बालू के बोरे खत्म होने पर
बारूद के बोरों की दीवारें खड़ी कर दी हैं
बाँध की सूराखों में तोपें अड़ी हैं
हेलीकाप्टरों पर चढ़ वे मोर्चा सँभाल रहे हैं
निकल चलो मेरे साथ
पानी चढ़ता जा रहा है।'

मैं जल्दी जल्दी
ये सब किताबें चादर में बाँधता हूँ
जिन्हें बचपन से पढ़ता आया हूँ
'ज्यादा कोशिश मत करो
पानी पहले नींव ही हिलाता है'
पर मैं गाँठ कसता जाता हूँ।

'जो बहुमूल्य हो, भारी न हो
उसे रख लो, जल्दी करो।'

मैं चारो खाने चित पड़ी
देवमूर्तियाँ देखता हूँ
पहली बार मुझे लगता है
मेरे पास बहुमूल्य कुछ भी नहीं है
मेरी जान तक नहीं
फिर मैं क्यों सब बचाना चाहता हूँ ?

'तुम्हारे पास रोशनी तो होगी ?'
—मैं पूछता हूँ

'कड़कती बिजली है
दिलों में, बस।
हर अँधेरा ख़ुद
रोशनी को जन्म देता है
अँधेरे में निकल पड़ो
तो अँधेरा अँधेरा नहीं रह जाता।
जल्दी करो, क्या तुम टार्च ढूँढ रहे हो ?
................ ........
अब मोह छोड़ो जल्दी करो।'

मैं किताबों का गट्ठर उठाता हूँ
संविधान की पुस्तक
सरक कर गिर पड़ती है
जिल्द से अलग हो जाती है।

मुझे लगता है चादर छोटी है।

'अब इसे इस हिलती कुर्सी के
पाये के नीचे लगा दो,
कुछ बचाने के लिए

हर क्षण ताजगी ये भरी
आलोकमय होती हुई
ये तुम्हारी मुद्राएँ;
संध्या के विविध
दृश्य रंगों के परिधानों-सी
यह तुम्हारी रुचि;
ऋतुओं की तरह
यह तुम्हारा आना-जाना;
नियति की तरह
यह तुम्हारा उठना-बैठना—
मुझे उस विराट सागर के सामने
हर क्षण खड़ा कर देता है
जिसके लिए मेरी भुजाएँ
बड़ी-छोटी दीखती हैं।

## राह निकलेगी

संशय —
इस भाव को मिटा दो
रोशनी जल उठेगी
तुममें निर्भय !

पीठ पर रखा छुरा
लगेगा प्रोत्साहन का स्पर्श
और तुम बिजली की तरह
आगे बढ़ जाओगे अक्षय।

उस आंख में देखो
अपनी आँख
लौ तेज होगी
बनेगी एक दृष्टि-लय।

उस हाथ में रख दो
अपना हाथ
सेतु निर्मित होगा
मिटेगा प्रलय ।

विपत्ति में
तुम अकेले नहीं हो,
असंख्य सोते कुलबुलाते हैं
चट्टानों में
मिल कर एक धारा बनने को,
इसे पहचानो
राह निकलेगी निश्चय ।

## कुआनो नदी (कुछ अंश)

पानी चढ़ रहा है :
खून खौल रहा है,
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान ।
निर्मल नहीं होती कोई बाढ़ –
उफान है, भँवर है,
गंदगी है, अंधा वेग है,
न जाने कहाँ-कहाँ से
बहता आता कूड़ा कतवार है,
आँखों के आगे आक्षितिज
फैला है जूझता मटियाला प्रवाह –
मेरी निगाह कुछ कमजोर हो गयी है ।

आधी रात वह मेरी साँकल खटखटाता है,
'किसी भी समय बाँध टूट सकता है
निकल चलो मेरे साथ........'

लेकिन मैं शब्दों को संदूक की तरह
मेज पर कुर्सियाँ और कुर्सियों पर
चारपाइयाँ रख कर जमाता हूँ।
'यह लड़ाई अब नहीं चलेगी
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान।'
उसकी आँखें व्यंग्य से मेरी ओर देखती हैं।

मुझमें अभी भी
बहुत कुछ बचा ले जाने का मोह है
और नदी को सब कुछ तोड़ने का जोश।
मुझे उसकी आँखों में
सुबह के अखबारों की सुर्खी दिखाई देती है
और मैं देश के नेताओं के चित्र
शृंगारदान से बाँध
उसे रस्सी के सहारे
लाश की तरह छत की कड़ी से लटका देता हूँ।

'उन्होंने अपनी रक्षा का इन्तजाम कर लिया है
बालू के बोरे खत्म होने पर
बारूद के बोरों की दीवारें खड़ी कर दी हैं
बाँध की सूराखों में तोपें अड़ी हैं
हेलीकाप्टरों पर चढ़ वे मोर्चा सँभाल रहे हैं
निकल चलो मेरे साथ
पानी चढ़ता जा रहा है।'

मैं जल्दी जल्दी
ये सब किताबें चादर में बाँधता हूँ
जिन्हें बचपन से पढ़ता आया हूँ
'ज्यादा कोशिश मत करो
पानी पहले नींव ही हिलाता है'
पर मैं गाँठ कसता जाता हूँ।

'जो बहुमूल्य हो, भारी न हो
उसे रख लो, जल्दी करो।'

मैं चारो खाने चित पड़ी
देवमूर्तियाँ देखता हूँ
पहली बार मुझे लगता है
मेरे पास बहुमूल्य कुछ भी नहीं है
मेरी जान तक नहीं
फिर मैं क्यों सब बचाना चाहता हूँ ?

'तुम्हारे पास रोशनी तो होगी ?'
—मैं पूछता हूँ

'कड़कती बिजली है
दिलों में, बस।
हर अँधेरा ख़ुद
रोशनी को जन्म देता है
अँधेरे में निकल पड़ो
तो अँधेरा अँधेरा नहीं रह जाता।
जल्दी करो, क्या तुम टार्च ढूँढ रहे हो ?
............. ...     ........
अब मोह छोड़ो जल्दी करो।'

मैं किताबों का गट्ठर उठाता हूँ
संविधान की पुस्तक
सरक कर गिर पड़ती है
जिल्द से अलग हो जाती है।

मुझे लगता है चादर छोटी है।

'अब इसे इस हिलती कुर्सी के
पाये के नीचे लगा दो,
कुछ बचाने के लिए

हर क्षण ताजगी ये भरी
आलोकमय होती हुई
ये तुम्हारी मुद्राएँ;
संध्या के विविध
दृश्य रंगों के परिधानों-सी
यह तुम्हारी रुचि;
ऋतुओं की तरह
यह तुम्हारा आना-जाना;
नियति की तरह
यह तुम्हारा उठना-बैठना—
मुझे उस विराट सागर के सामने
हर क्षण खड़ा कर देता है
जिसके लिए मेरी भुजाएँ
बड़ी-छोटी दीखती हैं।

## राह निकलेगी

संशय —
इस भाव को मिटा दो
रोशनी जल उठेगी
तुममें निर्भय !

पीठ पर रखा छूरा
लगेगा प्रोत्साहन का स्पर्श
और तुम बिजली की तरह
आगे बढ़ जाओगे अक्षय।

उस आँख में देखो
अपनी आँख
लौ तेज होगी
बनेगी एक दृष्टि-लय।

उस हाथ में रख दो
अपना हाथ
सेतु निर्मित होगा
मिटेगा प्रलय ।

विपत्ति में
तुम अकेले नहीं हो,
असंख्य सोते कुलबुलाते हैं
चट्टानों में
मिल कर एक धारा बनने को,
इसे पहचानो
राह निकलेगी निश्चय ।

## कुआनो नदी (कुछ अंश)

पानी चढ़ रहा है :
खून खौल रहा है,
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान ।
निर्मल नहीं होती कोई बाढ़ —
उफान है, भँवर है,
गंदगी है, अंधा वेग है,
न जाने कहाँ-कहाँ से
बहता आता कूड़ा कतवार है,
आँखों के आगे आक्षितिज
फैला है जूझता मटियाला प्रवाह –
मेरी निगाह कुछ कमजोर हो गयी है ।

आधी रात वह मेरी साँकल खटखटाता है,
'किसी भी समय बाँध टूट सकता है
निकल चलो मेरे साथ.........'

लेकिन मैं शब्दों को संदूक की तरह
मेज पर कुर्सियाँ और कुर्सियों पर
चारपाइयाँ रख कर जमाता हूँ।
'यह लड़ाई अब नहीं चलेगी
बहुत करीब आ गया है
ख़तरे का निशान।'
उसकी आँखें व्यंग्य से मेरी ओर देखती हैं।

मुझमें अभी भी
बहुत कुछ बचा ले जाने का मोह है
और नदी को सब कुछ तोड़ने का जोश।
मुझे उसकी आँखों में
सुबह के अखबारों की सुर्खी दिखाई देती है
और मैं देश के नेताओं के चित्र
शृंगारदान से बाँध
उसे रस्सी के सहारे
लाश की तरह छत की कड़ी से लटका देता हूँ।

'उन्होंने अपनी रक्षा का इन्तजाम कर लिया है
बालू के बोरे खत्म होने पर
बारूद के बोरों की दीवारें खड़ी कर दी हैं
बाँध की सूराखों में तोपें अड़ी हैं
हेलीकाप्टरों पर चढ़ वे मोर्चा सँभाल रहे हैं
निकल चलो मेरे साथ
पानी चढ़ता जा रहा है।'

मैं जल्दी जल्दी
ये सब किताबें चादर में बाँधता हूँ
जिन्हें बचपन से पढ़ता आया हूँ
'ज्यादा कोशिश मत करो
पानी पहले नींव ही हिलाता है'
पर मैं गाँठ कसता जाता हूँ।

'जो बहुमूल्य हो, भारी न हो
उसे रख लो, जल्दी करो।'

मैं चारो खाने चित पड़ी
देवमूर्तियाँ देखता हूँ
पहली बार मुझे लगता है
मेरे पास बहुमूल्य कुछ भी नहीं है
मेरी जान तक नहीं
फिर मैं क्यों सब बचाना चाहता हूँ ?

'तुम्हारे पास रोशनी तो होगी ?'
—मैं पूछता हूँ

'कड़कती बिजली है
दिलों में, बस।
हर अँधेरा ख़ुद
रोशनी को जन्म देता है
अँधेरे में निकल पड़ो
तो अँधेरा अँधेरा नहीं रह जाता।
जल्दी करो, क्या तुम टार्च ढूँढ रहे हो ?
................ ........
अब मोह छोड़ो जल्दी करो।'

मैं किताबों का गट्ठर उठाता हूँ
संविधान की पुस्तक
सरक कर गिर पड़ती है
जिल्द से अलग हो जाती है।

मुझे लगता है चादर छोटी है।

'अब इसे इस हिलती कुर्सी के
पाये के नीचे लगा दो,
कुछ बचाने के लिए

कुछ खोना पड़ता है
जो खोने से डरता है
वह बचा नहीं सकता।'

मैं उसकी ओर देखता हूँ
जैसे कि वह गीता रहस्य हो।
घर के पिछवाड़े बँधी
गाँधी जी की बकरी मिमियाती है
और कहीं गोली चलने की आवाज़ आती है।

'यह संकेत है बाहर आने का।'

मुझे धुएँ से भरे चायघरों में बैठे
मरियल हकलाते छोकरे याद आते हैं
जैसे बाढ़ में तैरते कछुए
जिनकी पीठ सख़्त हो।

इस नदी में
न जाने कितनी बार बाढ़ आयी है
रंगों में ख़ून खौला है
पर हर बार अँगीठियों से तमतमाए चेहरों पर
रोटियाँ ही सेंकी गयी हैं
पानी कभी खतरे का निशान पार नहीं कर पाया
हर बार पछाड़ खा-खा कर शांत हो गया है,
एकाध पुस्ते टूटे हैं
एकाध गाँव डूबे हैं—
नक्सलबाड़ी, श्रीकाकुलम, मुसहरी,
पानी कछार में फैल
सूखी धरती और सूखे दिलों में जज्ब हो गया है।
इन्सान उस पेड़ की तरह खड़ा रहा है
जिससे बाँध कर निरपराधों को

गोली मारी गयी हो
कितना आसान है पेड़ के लिए
बिना किसी खरोंच के अपने को बचा ले जाना।

मैं अपनी पसलियाँ टटोलता हूँ
जैसे जेल के ठंडे सीकचे हों।

'क्या तुम्हें यकीन है
इस बार बाँध टूट जायेगा ?'
'चंद कोयले ही अगर जल उठें
तो बाकी कोयले भी आग पकड़ लेते हैं।'

उसकी आँखों से निकलता धुआँ
मेरे चारों ओर फैलता जाता है,
मुझे लगता है अभी एक लपट कौंधेगी
और इस हरहराते पानी में आग लग जायेगी।
'अब हम मुजस्सिम असंतोष हैं
पारा किसी की चुटकी में नहीं आता
तुम अभी फैसला नहीं ले पा रहे हो
मैं ले चुका हूँ, जाता हूँ।
पर याद रखो
फैसले पर न पहुँचा हुआ आदमी
फैसले पर पहुँचे हुए आदमी से
ज्यादा खतरनाक होता है।
बहुत करीब आ गया है
खतरे का निशान।'

बाहर फिर गोली चलने की
आवाज आती है।
गहरे अँधेरे में वह
झमझमाता निकल जाता है

पता नहीं पत्थरों से
या वाढ़ में बहकर आयी
लाशों से ठोकरें खाता।

और मैं फिर निकलने से पहले
चीज़ों को अच्छी तरह देखता हूँ
कहीं कुछ हिल तो नहीं रहा है।

X

श्री भारतभूषण अग्रवाल

## जीवन-धारा

सघन बर्फ की कड़ी पर्त-सी
एक-एक कर अमित रूढ़ियाँ
सदियों से जमती जाती हैं
तह पर तह
मानव-जीवन पर।
तह पर तह—
ये आज ठोस दीवार बनीं
हैं रोक रहीं जीवन की गति
मन की उन्नति।
अवरुद्ध आज जीवन-धारा—
युग-युग से प्रचलित भय-निर्मित
इन अमित रूढ़ियों की कारा ने
बाँध लिया मानव का मन,
जग का जीवन।
आगे बढ़ने में विफल, व्यर्थ
असमर्थ
आज जग-जीवन की सरिता का जल
होकर वेकल
है फोड़-फोड़ निकला बाहर
दोनों कूलों के इधर-उधर
रसमय वसुधा के अंचल को
करके दलदल।

अवरुद्ध आज जीवन-प्रवाह।
जड़ता की जंजीरों में जकड़ा भीत हृदय

हिम-शीत मृत्यु के क्षुण्ण स्पर्श से
आज बना निर्जीव,
न उसमें शक्ति कि कर भी ले वह कुछ चीत्कार-आह !
सब ओर आज गतिहीन शान्ति, निष्प्राण मौन,
अस्वस्थ धरा, अवरुद्ध वायु, निस्तेज गगन
गंदला, अशुद्ध जग का जीवन ।
जग की रग-रग में जमा हुआ हेमन्त-शीत,
पतझार-पोत !

पर भय क्या है ! —अब देर नहीं
हम अग्नि-शिखा प्रज्वलित करेंगे
जिसके सम्मुख एक बार ही
गल-गल पिघल जायेंगे सारे हिम के प्रस्तर !
एक बार फिर
जीवन पायेगा अपनी उन्मुक्त धार, निर्बन्ध प्रगति
टूटेंगे गति के पथ में आये रूढ़िग्रस्त मानव के मन के भाव-बन्ध,
फिर से समस्त जग में छायेगा नव-प्रकाश,
नव-नवोल्लास, नव-गीत-छन्द !
फिर एक बार,
हिम की कारा को तोड़-फोड़
अक्षय, प्रशस्त, जीवन-धारा
वसुधा की चौड़ी छाती पर
सत्वर,
अमन्द,
बह पायेगी मग सरसाती
कल-कल गाती ।

फिर भय क्या है ? अब देर नहीं
हम लाते हैं वह वह्नि-तेज
जिसके स्फुलिंग की ज्यति-बिन्दु से
मिट जायेगा हेमन्त-शीत,

मिट जायेगी इस कड़वी जड़ता की सड़ाँध।
हम देख रहे टकटकी बाँध—
उग रहा पूर्व में नवालोक, अभिनव बसन्त।
अब देर नहीं—
विकसित होकर जग का शतदल
खोलेगा अपनी मुँदी आँख
जागृति की किरणों से ज्योतित
होगा अशेष जग का प्रांगण;
सौरभ से पूरित दिग-दिगन्त।

## चुक गया जब नेह

चुक गया जब नेह, बाती जर गई
मत करो चीत्कार
पगले।
शैल की चट्टान-सा ही
है उठा यह अन्धकार अपार
इसको भेद पायेगा नहीं यह कंठ स्वर
पहुँच पायेगी नहीं उस पार यह तेरी पुकार
व्यर्थ है ललकार
अनुनय व्यर्थ है।

पर न हिम्मत हार,
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा।
लौह छेनी की तरह आलोक की किरणें
काट डालेंगी तिमिर को
ज्योति की भाषा नहीं बँधती कभी व्यवधान से।

मुक्ति का बस है यही पथ एक!

## जल रहा हूँ मैं

जल रहा हूँ मैं
कि जैसे बाँस का बन;
आग
है
मगर दीखती नहीं
हजार बेचैनियाँ हैं जैसे
प्रेरणा
पर गीत कोई भी कभी लिखती नहीं
जब इस जिस्म का हर पोर
बन जायेगा बाँसुरी
उस फूँक की इन्तजारी है
तभी तो
एक-एक पल आज भारी है।
फूँक दो।
मुझे ओठों से लगा कर फूँक दो!!

## पी लो यह विष भी

हाथ क्यों काँप उठे?
डरो मत,
सोचो मत,
पी लो यह विष भी—
यह भी उसी मंथन से उपजा है
जिससे मिली तुम्हें पहले की रत्नराशि,
रुकना नहीं है तुम्हें अब अधबीच में।

अमृत?
हाँ, खोज थी तुम्हें तो उसी एक की—

किन्तु गाथा कहती है कि वह तो परिणति है ?
उसके उदय के पूर्व
प्रतिश्रुति भी कौन दे ?
अमृत का आश्वासन पाकर भविष्य से
विष पीने में नहीं कोई बहादुरी—
त्यागो यह सौदे की भावना
जूझो वर्तमान से—
अन्यथा यह हिचक ही विष बन जाएगी।

विष से अलग, अनपेक्ष नहीं अमृत का अस्तित्व—
मृत्यु या अमृत : ये ही दो परिणतियाँ हैं;
विष देख डर जाना मृत्यु है।
विष पी के पचा लेना—अमृत की यही परिभाषा है !!

## खंड हूँ विराट् का !

थे
ऐसे भी दिन थे--
जब मुझे अपना लघु अस्तित्त्व
किसी विराट् का खंड-मात्र लगता था
और जिसमें मिलने को
मैं अनुक्षण विकल था;
मेरी वह विकलता ही
उन दिनों
गीत बन जाती थी।

है
आज यह दिन भी आया है—
जब मुझे रह-रहकर
अपने पुराने गीत
विल बनाते हैं,

जब मुझे उस पूर्वाग्रह पर
करुणा हो आती है,
जब उस विराट् के
अनुक्षण पास आ रहे भीमकाय चरणों की चाप से
मेरे तन-प्राण तक सिहर-सिहर जाते हैं।

खंड हूँ विराट् का—संभव है, सत्य हो
किन्तु नहीं विन्दु हूँ प्रवाह का
जिसका उद्दिष्ट हो समुद्र में समाना ही
और दूर रहना
मिट जाने के समान हो !

खंड भी हूँ तो किसी दर्पण का खंड हूँ
अपने लघु अस्तित्व में भी
मैं सार्थक हूँ, पूर्ण हूँ
लाख रहूँ छोटा, पर मुकुर हूँ पूरा ही
और
मेरे अनगढ़, कुरूप चौखटे में बँधी
जीवन की झाँकी जो,
पूरी है, अखंड है।

मेरे प्राणों में अनुक्षण
गूँजा करते हैं ये जो चरण विराट् के
प्रतिपल समीप से समीपतर
एक दिन ये चाहे बन जायें
मेरे विकराल काल,
मेरी परिणति ये नहीं हैं।
खंड-खंड मिलाकर
वह महा दर्पण भी चाहे फिर जुड़ जाय
मेरी लघु लीक किन्तु मिट नहीं पायेगी,
और वह दर्पण भी

उस दिन
होगा बस संग्रह-भर
छोटी-छोटी अपने में पूर्ण प्रतिच्छवियों का —
उसमें जगेगा नहीं कोई एक महाकाय प्रतिबिम्ब
लीकें सब लीलकर !

मुझमें विराट् हुआ खंडित : यह सच भी हो, तो रहे।
खंडित है जो वह विराट् है
मैं तो सम्पूर्ण हूँ
अखंड हूँ
और मेरी विकलता ?
नहीं, वह नहीं है
विराट् के परस की चाहना –
वह उसके आसन्न परस की भीति है।

## बीज तू—मूल-भव

प्यार से सींचूँ तुझे ओ बीज मेरे।
एक दिन तू ही बनेगा फूल
एक दिन गुण-गान गायेंगे सभी ये भ्रमर तेरे
आ जुटेंगे सभी तेरे कूल
इसलिए आयास
क्योंकि होगा व्यक्त तू ही हास, मधुर-विकास में।
इसलिए आयास
क्योंकि आलिंगन बनेगा एक दिन तू ही अनिल के पाश में

देख मत तू : आज तेरी सेज मृण्मय है
देख मत तू : भ्रमर-दल किस ओर तन्मय है
सोच मत तू : तुझे आता है न वैसा हास
ध्यान कर : तेरी अभी कितनी नवल वय है।

सतत चेष्टा,
सतत मुक्ति-प्रयास, चिर-उद्योग
—फूटने का, विकसने का पर्व—यह संयोग ।

हास, फुल्लोल्लास—पायेगा सभी, तू समय आने दे
आज मिट्टी में तुझे मुझको बिछाने दे
जल बहाने दे ।

बीज तू, तू मूल-भव ! तू ही अरे ! है वह्नि-चिह्ना क्रान्ति
सुप्त तू, तुझमें प्रसुप्ता अनुगता भू-कान्ति !

★

# शब्दार्थ-संकेत

## श्री 'अज्ञेय'

### यह दीप अकेला

दीप मानवीय अस्मिता एवं पंक्ति सामूहिक चेतना का प्रतीक है। पनडुब्बा गोताखोर, समिधा—हवन-सामग्री, मौना—पिटारी, (एक प्रकार का बर्तन जिसमें तेल या घी रखा जाता है), प्रकृत—विकार रहित, अयुत—दस हजार की संख्या, कुत्सा—निन्दा, उल्लम्ब—सीधा खड़ा हुआ।

### होने का सागर

सागर समष्टि का और मछली व्यष्टि की द्योतक है। विद्युद्-द्रुत—विजली के समान तीव्र गति वाली

### मथो

मन्थानी—दही बिलोने वाली मथानी या रई, हलाहल—विष।

### पक्षधर

पक्षधर - समर्थक, कल्पक—कल्पना करने वाला, क्रान्ता—क्रांति-कारी, अनाकुल—अव्यग्र, जो घबड़ाया हुआ न हो, उन्मुक्ति—छुटकारा।

### देह-वल्ली

देह-वल्ली—शरीर रूपी लता, उन्नीत—ऊँची उठी हुई, किंशुकाः—टेसू का फूल, उन्मेष विकास, स्वयम्भाव—अपने आप उत्पन्न, व्रीड़ा-हीन—लज्जा रहित, इयत्ता—सीमा, अनावृत्ता—आवरणहीन, खुली।

### कलगी बाजरे की

नीहार - ओस, कुई कुमुदिनी, टटकी—ताजी, नई, मालंच—पुष्पवाटिका, औदार्य उदारता, संसृति—सृष्टि।

### बना दे चितेरे

उत्सृष्ट—छोड़ा हुआ, स्वायत्त—जिस पर अपना ही अधिकार हो, जिजीविषा—जीवित रहने की इच्छा, तडिल्लता—विजली, अप्रसूत—बाँझ, उदीषा—ऊपर उठने की आकांक्षा, उदग्र—उन्नत, प्रचंड।

## श्री मुक्तिबोध

### दूर तारा

आवर्त्त—जल का भँवर, निस्संग—अकेला, कल्मषों—पापो, भीतिहीन—निर्भय, मनुपुत्र—मनुष्य।

### नूतन अहं

गहिर—गहरी, अहोरात्र—दिन-रात, सुतीक्ष्ण—तेज, उत्तुंग—ऊँचा।

### मेरे लोग

स्थितप्रज्ञ—जिनकी बुद्धि स्थिर है, मन्थर—धीमी, निःस्वात्मक—दरिद्रतापूर्ण।

### पता नहीं

कनेर—लाल, पीले और सफेद फूल का एक छोटे आकार का वृक्ष, उरस्-स्पृशा—हृदय को छूने वाली, रुधिर-स्नात—रक्त से भीगा हुआ, उत्कलित खिला हुआ।

### अँधरे में

अनिवार—बिना रुके हुए, हनु—ठोढ़ी, तिलस्मी खोह--जादू भरी गुफा, भीत—दीवार, पठार—पहाड़ी देश, क्षत-विक्षत—घायल, गह्वर—दुर्गम, नक्षा—नक्शा।

## श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

### धीरे धीरे

सीमान्त—वह स्थान जहाँ सीमा का अन्त होता है (फ्रंटियर)।

**रूप दर्शन**

वेत—बेंत, परिधानों—वस्त्रों, नियति—भाग्य।

**कुआनो नदी**

कतवार—कूड़ा-करकट, बेकाम घास-पूस, मरियल—दुर्बल, पुश्ते—बाँध, मूजस्सिम—पूरी तरह।

## श्री भारतभूषण अग्रवाल

**जीवन-धारा**

अवरुद्ध—रुकी हुई, क्षुण्ण—नश्वर, प्रस्तर—पत्थर, सत्वर—शीघ्र, वह्नि—आग, स्फुलिंग—चिनगारी, शतदल—कमल, प्रांगण—आँगन, दिग-दिगन्त—दिशायें।

**चुक गया जब नेह**

शैल—पर्वत, अनुनय—प्रार्थना, व्यवधान—बाधा।

**पी लो यह विष भी**

परिणति—परिणाम, समाप्ति, प्रतिश्रुति—स्वीकृति (गारन्टी), अनपेक्ष—बेपरवा।

**खण्ड हूँ विराट का**

अनुक्षण—प्रतिपल, भीमकाय—विशाल शरीर, उद्दिष्ट—लक्ष्य, अभिप्रेत, मुकुर—दर्पण, आसन्न—समीप, भीति—भय।

**बीज तू—मूल-भव**

आयास—प्रयत्नपूर्वक, मृण्मय—मिट्टी से बनी हुई, प्रसुप्ता—सोई हुई, अनुगता—पीछे चलने वाली।

★